नमोबुद्धाय शुद्धाय।

धर्म्मपद

आरकन (Arkan) निवासी श्रीयुक्त चन्द्रमणि भिक्खु कृत

हिन्दी अनुवाद सहित

श्री ६ महास्थविर महावीर भिक्खु स्थानीय माथाकुंवर कोट

(परिनिर्वाणस्थान)

कस्या गोरखपूर की आज्ञानुसार प्रकाशित किया गया

इंडियन प्रेस, प्रयाग में छपा।

सन् १९०९

सूचीपत्र

बुद्ध भगवान् की समय-सूची।

जन्म—ईसवी सन् से ५४३ वर्ष पहिले लुम्बनी नाम शाखू बन से घिरे हुए स्थान में बुद्ध भगवान् का जन्म हुआ। वर्त्तमान समय गोरखपूर से चढ़ कर नौगढ़ स्टेशन में उत्तर के कंकड़ाह बाज़ार को चलना चाहिये, वहां से चार माइल पर रोमनी देवी करके प्रसिद्ध मन्दिर है जहां महाराजा अशोक के समय का दश हाथ प्रमाण एक विशाल शिला का स्तम्भ खड़ा है। जिस पर बुद्ध भगवान् के जन्म की व्यवस्था लिखी है।

वानप्रस्थ—ईसवी सन् से ५१४ वर्ष पहिले कापिलवस्तु पुरी से निकल कर मगधदेश में गया जी के समीप उरूवेला नाम एक अन्धेरे वन में तपस्याचरण किया।

बुद्धत्वलाभ—ईसवी सन् से ५०८ वर्ष पहिले निरंजना (फाल्गु) नाम नदी के पश्चिम तट पर

एक विशालबोधि वृक्ष था उसके मूल में अचल योगासन लगा कर बुद्धत्व प्राप्त हुए । आज कल लोग उसे बुद्ध गया कहते हैं जहां अभी तक वोधिद्रुम (वासुदेव वृक्ष) वर्तमान है ।

प्रथमोपदेश—ईसवी सन् से ५०८ वर्ष पहिले काशीपुरी से उत्तर तीन कोश के दूर पर ऋषिपतन नाम एक तपोवन था उसमें कौण्डिन्यादि पांच वर्गियों (पंचऋषियों) को धर्मचक्र नाम सूत्र व्याख्या सहित सुना कर अपना शिष्य बना लिया ।

परिनिर्वाण—ईसवी सन् से ४६३ वर्ष पहिले मल्लवंश धरों के कुसिनारा नाम राजधानी के समीप एक विशाल शाखू वन में उत्तर दिशा की ओर शिर किये मोक्षलाभ किया । वर्त्तमान समय ज़िला गोरखपूर पोस्ट आफिस कस्याके समीप माथाकुंवरकोट करके प्रसिद्ध मन्दिर है ।

प्रथम सभा—ईसवी सन् से ४६३ वर्ष पहिले भगवान् के परिनिर्वाण के दो महीने बाद बौध-

मत से विरुद्ध उपदेश करने वाला एक सुभद्र नाम भिक्खु के मत के खण्डन करने के लिये महाकश्यपादि पांच सौ भिक्खुगण राजगृह में वैभार पर्वत की एक गुफा के सन्मुख मगधेश्वर अजातशत्रु की सहायता से त्रिपिटक अर्थात् तीन शास्त्र की पुनरावृत्ति की ।

द्वितीय सभा—ईसवी सन् से ३६३ वर्ष पहिले वेशाली (अनुमान से छपरा ज़िला में होना चाहिये) नाम राजधानी के समीप वेलुका राम विहार में महायश आदि ७०० भिक्खु गण बौद्धमत से विरुद्ध उपदेश करने वाले १०००० भिक्खुओं के मत के खण्डन करने के लिये आठ महीने तक कालाशोक महाराज की सहायता से फिर त्रिपिटक की आवृत्ति की ।

तृतीय सभा—ईसवी सन् से २३५ वर्ष पहिले मोग्गली पुत्र आदि १००० भिक्खुगण महाराजा अशोक

की सहायता से अधर्मवादी धूर्त्त भिक्खुओं को निकलवा कर राजधानी पटना के समीप अशोकाराम विहार में नव ९ महीने तक तीन शास्त्र की फिर आवृत्ति की और सिद्ध भिक्खुओं के द्वारा लंका आदि नव विदेशों में भेज कर बौद्ध धर्म का प्रचार कर दिया ।

चतुर्थ सभा—ईसवीसन् से २ १ ३ वर्ष पहिले अशोक महाराज के पुत्र महामहिन्द आदि दो लाख भिक्खुगण ने लंका द्वीप के महाराजाधिराज दुष्टग्रामणी की सहायता से ताल पत्रों में त्रिपिटक लिखा दिया गया ।

—:०:—

नमो बुद्धाय शुद्धाय ।

संक्षिप्त बुद्ध-जीवन-चरित्र ।

दो हज़ार चार सौ इक्यावन २४५१ वर्ष पहिले अर्थात् ईसवी सन् से ५ ४ ३ वर्ष पहिले भारतवर्ष के उत्तर भाग में कपिलवस्तु नाम राजधानी में जिसे आजकल बस्ती कहते हैं वहां शाक्यवंशियों के शिरोमणि, प्रजा-वत्सल, न्यायपरायण, स्वधर्मनिष्ठ, धर्मात्मा, महाराजा-धिराज श्री १०८ महाराज शुद्धोदन राज्य करते थे। उन की धर्मपत्नी परिशुद्धचारिणी दयामयी श्रीमती परम पूज्य माया देवी थी। उसके गर्भ में जगत् के उद्धार करने के लिये बोधिस्वत्व अर्थात् बुद्ध भगवान् ने आश्रय लेकर नव मास तक निवास किया।

दसवें महीना वैशाख शुक्ल पूर्णिमा को शुभ लग्न शुभ मुहूर्त में कपिलवस्तु, देवदह नाम दो राजधानियों के मध्यस्थ लुंवनी नाम शाखु-वन में देव और नर सब के मन को तृप्त करने के लिये बुद्ध भगवान् का अवतार हुआ। उस के बाद नाम संस्कार के दिन जगत् के हित तथा सिद्धि के दाता होने के कारण

आप का नाम सिद्धार्थ रक्खा गया। उस दिन से राजकुमार का रूप और यौवन शुक्लपक्ष चन्द्रमा की कला के समान दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा । यद्यपि बाल्यपन से ही बालक्रीडा और कुतूहलों की अपेक्षा एकान्त में ही वास करना प्रसन्न करते थे तथापि नरलीला तथा पिता जी की आज्ञानुसार सर्वाङ्गसुन्दरी श्रीमती यशोधरा नाम एक राजकुमारी के साथ विवाह किया। तब से २८ वर्ष की अवस्था तक अनेक प्रकार के लौकिक सुखों का अनुभव करते हुए २६ वें वर्ष को पहुंचे। नतीजा यही हुआ कि एक दिन बाग़ में सैर करने को निकले। उस समय वृद्ध रोगी मृतक और भिक्षुक (योगी) इन चार प्रकार के मनुष्यों की अवस्था तथा स्वाँग को देखकर असार संसार की विषय-वासना का सुख नरक के अग्निकुण्ड के समान हृदय में खटकने लगा। यद्यपि सप्ताह के भीतर ही चक्रवर्ती राज्य सुख मिलने ही वाला था तब भी सारे जगत् को माया मोह की ज़ंजीरों से जकड़ा हुआ जान कर निर्मोही हो अर्धरात्रि के समय वन को प्रस्थान किया ।

आगे अनोमा नाम गंगानदी को पार करके शुभ्र पवित्र रेतिओं से सुशोभित उस नदी के तीर में अपनी तल-

वार से केश को मूड़ कर कटिकार नाम ब्रह्मा के दिये हुए कषाय वस्त्र को धारण करके मगध देश गयाजी के निकट उरुबेला नाम अन्धेरे जंगल में तपस्या करने को गया ।

इसी प्रकार ५ वर्ष तक अति कठोर तप करके छठवें वर्ष वैशाख पूर्णिमा को हरे भरे दल पत्तों से सुशोभित और अपनी सघन छाया से पथिकों के श्रम को तत्काल दूर करने वाले एक विशाल वासुदेव वृक्ष को देखकर सोत्थिय नाम ब्राह्मण से दिये हुए आठ मूठी कुश को उसके मूल में बिछा के अचल योगासन लगाकर ध्यान करने लगा ।

इस के बीच में हज़ारों भुजाओं को निर्माण करके नानारूप धारी असंख्य राक्षस सेनाओं से सज धज कर मार अर्थात् कामदेव पहुँचा और सिद्धार्थ को वहां से उठाने के लिये अनेक प्रयत्न किये अर्थात् जहाँ तक उसकी शक्ति थी तहाँ तक उठा न रक्खा। अन्त में महापुरुष ने अपना मुख्य शस्त्र मैत्री भावना योग से पराजय करके सब विघ्नों को शान्त किया। इसी प्रकार क्रमशः ध्यान करते करते रात्रि के प्रथम भाग

में पूर्वजन्मानुस्मृति नाम ज्ञान, दूसरे प्रहर में दिव्यदृष्टि, तीसरे प्रहर में आसवक्षय (तृष्णाक्षय) ज्ञान तक पहुंच कर चौथे प्रहर में अर्थात् प्रातःकाल होते ही सिद्धार्थ-कुमार ने महामोहान्ध अविद्याजाल को तोड़ फोड़ कर त्रैलोक्यपूज्य पवित्रात्मा सर्वकलंकरहित अनेकगुण-विशिष्ट अनन्त ज्ञानी करुणायतन बुद्ध-भाव को प्राप्त किया। उसके बाद अन्नजलरहित केवल समाधि-सुख का अनुभव करता हुआ उस बोधि-वृक्ष के आस पास सात सप्ताह अर्थात् ४६ दिन तक सुखवास करके वाराणसी अर्थात् काशी पुरी को प्रस्थान किया। वहाँ से तीन कोस पर ऋषिपतन नाम तपोवन में आषाढ़ पूर्णिमा को पहुँच कर धर्मचक्र नाम व्याख्या को सुनाया और कोण्डन्य, वप्य, महानाम, भद्दीय, अस्साजि नाम पाँच ब्रह्म ऋषियों ने बुद्ध भगवान् की व्याख्या या उपदेश को सुन कर उनके शिष्य बन गये।

तब से अनेक ज्ञानी मानी राजे महाराजे सेठ साहू-कार ब्राह्मणादि बुद्ध भगवान् के उपदेश को मानने लगे। इसी प्रकार काशी कोशलादि अनेक देश देशा-न्तरों में पदार्पण कर असंख्य नर नारियों को मुक्ति

का मार्ग दिखलाकर परमोपकार करते हुए ४४ वर्ष गुज़र गये। ४५ वें वर्ष के वसन्त ऋतु में अनेक शिष्यगणों के साथ बेसाली नाम राजधानी से यात्रा प्रारम्भ की और जिस जिस स्थान में पहुंचे वहां वहां के लोग बड़े समारोह के साथ पूजा उत्सव कर धर्म का श्रवण करते थे। इसी तरह से चलते चलते वैशाख की पूर्णिमा को भारतवर्ष के उत्तरीय भाग में कुसिनारा नाम मल्लवंशियों की एक राजधानी थी। उस नगर के समीप एक सघन शाल (साखू) के वन में पहुँचे। शरीर की अस्वस्थता के कारण दोनों साखू वृक्षों के बीच में पर्यङ्क बिछाकर उत्तर दिशा की ओर शिर करके लेट रहा था। यह समाचार सुन कर आसपास के राजे महाराजे ग़रीब अमीर सब लोग भगवान् के अन्तिम दर्शन करने को आने लगे। परमकृपालु भगवान् भी अपने शारीरिक दुःख की परवाह न कर स्वाभाविक मधुर तथा अतिसरल वाक्य से रात भर उपदेश करते रहे। जब ब्राह्म मुहूर्त अर्थात् शेष रात्रि का समय आ पहुंचा तब सब भिक्षुगण को संबोधन करके कहा कि "हन्ददानि भिक्खवे आमन्तरामि वो वयधम्म सङ्खारा अपमादेन संपादेथ"।

अर्थात् "हे भिक्षुगण ! सावधान होकर संस्कारों के अनित्य असार भाव को ध्यान करते रहो।" ऐसा अन्तिम उपदेश सुना कर जैसे सहस्र किरणधारी सूर्य देव संध्या के समय अस्ताचल-शिखर पर धीरे धीरे चले जाते हैं वैसे ही सारे मृत्यु लोक को अन्धेरे कूप तथा शोकसागर में ढकेल कर आप नित्य शान्त सूक्ष्मज्ञान-गोचर अच्युतानन्द मोक्ष पद में सदा के लिये लीन हो गये ॥

इति संक्षिप्त-बुध-जीवनम्

भूमिका

इसी परिनिर्वाण के अवसर पर बुद्ध भगवान् की अन्त्येष्टि क्रिया करने के लिये तथा सहानुभूति प्रकट करने के लिये देश देशान्तरों से राजे महाराजे और अनेक भिक्षुओं का समागम हुआ। उनमें से महाकश्यप भिक्षु सबसे बड़ा और भगवान् का भी प्रधान शिष्य था। उसने परिनिर्वाण के समय बुद्ध भगवान तथा उनके धर्म का अपमान करने वाले एक सुभद्र नाम भिक्षु के वचन*को सुनकर सात लाख भिक्षुओं को एकत्र करके एक महासभा की और आप सभापति का आसन ग्रहण कर बोला—अब हमारे पूज्य गौतम भगवान् इस लोक में नहीं। वह हम लोगों से बिदा होकर आवागमन से रहित मुक्तिपद में सदा के लिये चले गये। अब हम लोगों को भरोसा

---

* बुद्ध का परिनिर्वाण समाचार सुन कर उसने कहा—"अब हम लोग गौतम के शिक्षाजाल से मुक्त हुए। अब इच्छा-पूर्वक विचरेंगे।"

केवल उनके उपदेश पर रह गया । उनका एक एक वाक्य हमारे लिये माननीय गुरु है तथा उसकोही गौतम बुद्ध समझना चाहिये और जब तक उनकी शिक्षा हमारे हृदयकमल में विराजेगी तब तक बुद्ध भगवान् हम लोगों से दूर नहीं हैं । लेकिन ये सब बातें उस दुष्ट सुभद्र भिक्षु के विचार में उलटी हो गयीं । वह समझता है कि अब तो बुद्ध भगवान् परिनिर्वाण होगये। हम जो चाहें सो करेंगे । देखो हमारे सदृश भगवान् के मुख्य शिष्यों के समक्ष भी संकोच छोड़कर उसने अपमान किया इसलिये हम लोगों को उचित है कि इस दुष्ट के मतप्रचार होने के पहिले ही एक सभा करके बुद्ध भगवान् के उपदेश-ग्रन्थों की आवृत्ति करें । इस काम के लिये परम सिद्धिप्राप्त पांच सौ भिक्षु होने चाहियें। इसी प्रकार महाकश्यप के वचन सुन कर सब सभासदों ने एक स्वर से अनुमोदन किया, तथा स्वतंत्रता से सभासद चुनने का अधिकार भी दिया गया तब सभापति महाकश्यप, उपालि, आनन्द इत्यादि पंचसौ भिक्षुओं को साथ ले कर मगध देश को चला गया। उस समय राजगृह में महाराजा बिम्बसार के पुत्र अजातशत्रु राज्य करते थे । उससे सहायता मांग कर वेभार नाम

पर्वत में एक गुफा के सामने सुबृहत् मंडप बनवा कर सावन की पूर्णिमा को सभा प्रारम्भ की ।

सभापति महाकश्यप ने पूंछा कि महाशयगण, बुद्ध भगवान् के उपदेश धर्मशास्त्र में सूत्र, विनय, अभि-धर्म्म करके तीन ग्रन्थ हैं उनमें से किस शास्त्र की आवृत्ति पहिले होनी चाहिये ।

सभासदों ने कहा—विनय शास्त्र की। कारण यह कि भिक्षुओंके लिये आचार, विचार, तथा शिक्षा, शील का एक विधान ग्रन्थ है । इस लिए उसकी आवृत्ति पहले होनी चाहिए। तब सभापति ने विनय शास्त्र के अधिकारी तथा बुद्ध भगवान् से विनयधर नाम उपाधि प्राप्त उपालि नाम भिक्षु को धर्मासन में बैठा कर प्रश्न पूछना प्रारंभ किया।

प्रश्न—महाशय उपालि !! विनय शास्त्र में प्रथम शिक्षा का प्रचार किस समय किस देश में किसके प्रति किस कारण से हुआ ?

उत्तर—महाशय कश्यप ! वेशाली नाम नगर में, सुदिन नाम भिक्षु को स्त्री से संग करने के अपराध में इस शिक्षा का (अर्थात् जो भिक्खु होकर यह कर्म करे उस को निकाल देना चाहिये यह) प्रचार किया ।

इसके बाद पाँच सौ भिक्षुओं ने मिल के उस प्रथम शिक्षा की आवृत्ति (एक स्वर से उच्चारण) किया। इसी तरह से द्वितीय तृतीय आदि शिक्षा की भी आवृत्ति करके संपूर्ण विनय शास्त्र को समाप्त किया और उस विनय शास्त्र को पाराजिकाण्ड, प्रायश्चित्यादि काण्ड, महावर्ग, चूलवर्ग, परिवर्ग नाम से पंच काण्डों में विभक्त करके रक्खा।

इसके बाद सूत्र अभिधर्म दोनों शास्त्र के पारंगत और बुद्ध भगवान् से धर्मधर नाम उपाधिप्राप्त आनन्द भिक्षु को धर्मासन में बैठाकर सभापति ने प्रश्न किया कि महाशय आनन्द। सूत्र शास्त्र के आदि ब्रह्मजाल नाम सूत्र को किस देश में किस समय किस कारण से किस के प्रति भगवान् ने उपदेश किया उत्तर—महाशय कश्यप! राजगृह और नालन्द* के बीच में सुप्रिय नाम परिव्राजक ने बुद्ध भगवान् की निन्दा की, इस कारण यह सूत्र-व्याख्या प्रचार की गई। इसी प्रकार देश, काल, कारण और कार्य को पूछ पूछ कर ३४ सूत्र का दीर्घ निकाय, १५२ सूत्र का मध्यम निकाय तथा ७७६२

* यह स्थान आजकल राजगृह के समीप बड़गावँ करके प्रसिद्ध है।

सूत्र का संयुक्त निकाय, ६५५७ सूत्र का अङ्गुत्तरनिकाय और खुद्दकपाद १, धम्मपद २, उदान ३, इतिवुत्तक ४, सूत्रनिपात ५, विमानवत्थु ६, प्रेतवत्थु ७, थेरकथा ८, थेरीकथा, ६ जातक १०, निर्देश ११, प्रतिसम्भिन्दामर्ग १२, अपादान १३, बुद्धवंश १४, चरियापिटक १५, इन सब ग्रन्थों का क्षुद्रक निकाय नाम रख कर संपूर्ण सूत्र शास्त्र को पांच निकायों में अर्थात् पांच कांडों में विभक्त करके आवृत्ति की गयी ।

उसके बाद अभिधर्म शास्त्र की आवृत्ति प्रारम्भ की । पहिले की तरह सभापति ने प्रश्न किया । उत्तर में आनन्द भिक्खु ने कहा—गौतम भगवान् बुद्ध होकर सातवें वर्ष में कोशल देश में स्रवस्ति नाम राजधानी * के समीप कण्डप करके एक सुप्रसिद्ध आम्र वृक्ष था । उस के समीप अपनी योगलीला से असंख्य नरनारियों को मुग्ध कर अन्त में माता के उद्धार निमित्त इन्द्रलोक में पदार्पण किया । वहाँ अपनी मातृदेवता अर्थात् माया देवी को प्रधान रख कर अगणित देव गण

---

* आज कल बल्लामपूर रियासत से पश्चिम पांच कोस पर सहेत महेत नाम से प्रसिद्ध स्थान है ।

के मध्य में इस अभिधर्म नाम तत्त्वविचार शास्त्र से तीन मास पर्य्यन्त धाराप्रवाह के समान उपदेश करते रहे और भिक्षा के समय मृत्युलोक में आकर उत्तर कुरु देश में से भिक्षा ले हिमलाय के एक चन्दन वन में भोजन किया करते थे। इसी अवसर पर आपके प्रधान शिष्य सारीपुत्र भिक्षु कोशल देश से आकर प्रतिदिन सेवा किया करता था। उस समय बुद्ध भगवान् देवताओं के प्रति अति विस्तर से किये हुए उस उपदेश को अति संक्षेप रूप से सारीपुत्र को शिक्षा देकर फिर देवलोक में चले जाते थे। इधर सारीपुत्र कोशल देश में आकर अपने पांच सौ शिष्यों को अनति विस्तर और अनति संक्षेप से शिक्षा दिया करता था। इसी प्रकार यह अभिधर्म नाम शास्त्र तीन मास में समाप्त होकर लोक में प्रचलित हुआ। इस प्रकार आनन्द भिक्षु के उत्तर से समाधान हो जाने पर सभासदों ने मिल के उस अभिधर्म शास्त्र की भी आवृत्ति की। फिर उसका धर्मसंग्रहणी १, विभाङ्ग २, धातुकथा ३, पुग्गलप्रज्ञप्ति ४, कथावस्तु ५, यमक ६, पठान ७, इन सात काण्डों में विभाग करके रख दिया।

विनय सूत्र और अभिधर्म इन तीन शास्त्रों को पाली भाषा में त्रिपिटक कहते हैं और उस आवृत्ति सभा को भी महासंगति सभा कहते हैं उसी महासंगति सभा ने भविष्यत में सब लोगों के सुख-बोधार्थ अति विस्तर सूत्र पिटक (शास्त्र) से मुख्य उपदेश-श्लोकों को चुनकर धम्मपद नाम ग्रन्थ बनाया। इस ग्रन्थ में २६ वर्ग (अध्याय) तथा ४२३ श्लोक हैं। यह सदुपदेश ग्रन्थ केवल बौद्धों को ही उपयोगी नहीं वरन् भूमण्डल भरके सब लोगों का परमोपयोगी तथा पठन, पाठन, मनन करने योग्य है। क्योंकि इसमें पक्षपात की बाते नहीं हैं। केवल ब्रह्मचर्य्य गृहाश्रमादि चारों आश्रमों को सदाचार के लिये ही बुद्ध भगवान् ने तरह तरह की उपमा दिखा कर उपदेश किया है। खेद है कि एक समय गौतम बुद्ध का हृदयग्राही यही सदुपदेश भारत वर्ष के प्रत्येक देश और प्रत्येक ग्राम-नगर में स्वतन्त्रता से विचरता था तथा अनेक विद्वान् और महात्मा गण इन उपदेशों के द्वारा ही अपने शिष्य एवं पुत्र, स्त्री, इष्ट मित्रों को शिक्षा देकर ईर्ष्या, द्वेष और परस्पर विरोधादि असच्चरित्रों से बचाकर निज देश भारत भूमि को उन्नतिशिखर पर चढ़ा दिया था। यह बात श्रीमान् १०८

अशोक और कनिष्क इत्यादि सार्वभौम महाराजाओं के इतिहास से पाठकों को विदित ही है। वही शान्ति-प्रिय गौतम बुद्ध के सदुपदेशसमूह समय के फेरफार से अपनी जन्म भूमि भारत वर्ष से एकबारही अन्तर्धान होगया। जिस दिन से बौद्धधर्म का लोप हुआ तबसे भारतवर्ष की दशा "कदाचिच्चलिता लक्ष्मी: सर्वमेव विनश्यति" इस को चरितार्थ कर रही है।

इस ग्रन्थ का समादर बरमा, लंका और चीन, जापान, तिब्बत इत्यादि ४० करोड़ लोग तो करते ही हैं वरन् अनेक पश्चिमी विद्वान् गण भी इसके असाधारण गुण को देखकर अपनी अपनी भाषा में अनुवाद करके स्वदेशियों की सेवा में परिचय देचुके हैं। जैसे सन् १८५५ ई० में डेनमार्क-निवासी सुप्रसिद्ध डाक्टर फ़जबोल ने धम्मपद का अत्युत्तम संस्कार किया तथा लैटिन भाषा में अनुवाद कर पश्चिमी विद्वन्मण्डली के चित्त को आकर्षण कर लिया। उसके बाद वाणूफ गर्गालि वो ऊफम बेवार प्रभृति अनेक विद्वानों ने इस ग्रन्थ का फ़्रांसी और अंग्रेज़ी इत्यादि भाषा में अनुवाद कर दिन दिन प्रचार किया था तथा

सन् १८७६ ईसवी में अध्यापक मोक्षमूलर ने धम्मपद का अंग्रेज़ी में अनुवाद कर प्राचीन ग्रन्थावली में प्रकाशित किया। एवं सन् १८७१ ई० में लंडन रायल एसियाटिक सोसाइटी के जनरल में अध्यापक चौलडार्स महोदय ने धम्मपद के विषय में अनेक बातें खोज कर एक सुदीर्घ प्रबन्ध प्रकाशित किया। इसी साल में ही डाक्टर जेम्स अल बीस नाम सिंहली जनरल ने धम्मपद की एक सुदीर्घ समालोचना प्रकाशित की तथा सन् १८७८ ई० में फर्णाराडहू महाशय ने फ्रांसीसी भाषा में, सुप्रसिद्ध डाक्टर रेवरेणडवील ने चीन भाषा से अंग्रेज़ी में और सुप्रसिद्ध डाक्टर सोफरनार ने तिब्बतीय धम्मपद से जर्मन भाषा में अनुवाद किया। सन् १८६८ ई० में कलकत्ता की बुद्धेष्ट टेक्स्ट सोसाइटी से बुद्धघोस टीका सहित धम्मपद प्रकाशित हुआ। इसी प्रकार अनेक दिन से भूमण्डल भर के अनेक विद्वान् गण इस अनुपम ग्रन्थ की सेवा + मान और सत्कार करते आये तथा कर रहे हैं। इससे मेरे मन में भी यह हुआ कि बहुत दिन से बिछुरे हुए इस अलभ्य ग्रन्थ को उसकी जन्मभूमि तथा स्वदेशियों से एक

बार भेट करादूं। लेकिन केवल पाली भाषा और मूल मात्र से भारतवासियों को बोध होना कठिन है। यद्यपि यह पाली भाषा या मागधी भाषा १५०० वर्ष पहिले देशव्यापिनी राजभाषा हो कर भरत खगड में बिचरती थी तथापि समय के फेरफार से वर्त्तमान समय में उसका परिचय एकबार ही उठ गया। इससे पाठकों को सुखबोधार्थ बहुत परिश्रम से बुद्ध घोष टीका बरमी भाषा और लंका भाषा के ग्रन्थों से अनेकबार शोधकर हिन्दी में अनुवाद करके पाठकों की सेवामें अर्पण करता हूं। पाठकगण एक बार आद्योपान्त पढ़ के मेरे परिश्रम को सफल करें, जिस से दूसरे ग्रन्थों का भी अनुवाद करके पाठकों की सेवा के लिये उत्साह बना रहे। प्रार्थना यह है कि मैं अरकन (Arkan) देश निवासी एक भिक्खु हूं। मेरी मातृभाषा उस देश की है इससे भाषान्तर में प्रवेश कर अनुवाद और लेख द्वारा पाठकों को संतोष करा देना मुझे कदापि सम्भव न होगा। अतएव इस ग्रन्थ में पद, वाक्य और लिङ्ग वचनादि जो कुछ विपरीत दोष देख पड़े उसे कृपया परिशोध कर पढ़िये तथा सूचना दीजिये जिससे दूसरे

संस्कार में पूर्ण रूप से शुद्ध हो जावे ।

इस ग्रन्थ का अनुवाद करते समय पंडित जयगोविन्द प्रयागवासी तथा श्रीमान् बाबू शिवबालक सिंह (सोमवंशी) हेड मास्टर कस्या ने मुझे बड़ी ही सहायता की है इससे उन महाशयों को भी अनेक बार धन्यवाद देता हूं ।

फाल्गुन, सम्वत् १९६५,
मार्च, सन् १९०८ ई०

चन्द्रमणि भिक्खु ।

धम्मपद

हिन्दी-अनुवाद-सहित

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

एक समय गौतम बुद्ध कोशलदेश में स्रावस्ति नाम राजधानी के समीप ज्येष्ठवन नाम मठ में विराजते थे। उस काल में भगवान् का दर्शन करने के लिये अनेक देश देशान्तरों से भिक्षु लोग आया करते थे। एक दिन का हाल यह हुआ कि आगन्तुक भिक्षुगण भगवान् के प्रधान शिष्यों का भी दर्शन करने के लिये उस मठ में भ्रमण करने लगे। वहां दोनों आँखों से अन्धा एक चक्षुपाल नाम प्रसिद्ध भिक्षु भी रहता था। वह हर रोज़ संध्या के समय कुटी से बाहर निकल कर एक स्वच्छ ज़मीन पर टहलता था। उस दिन उसके पैरों से दब कर बहुत चींटियाँ मरी पड़ी थीं। यह हाल देख कर आगन्तुक भिक्षुओं के मन में बहुत दुःख हुआ। चक्षुपाल के बिना दर्शन किये ही भगवान् के पास चले गये और भगवान् से प्रार्थना की कि हे कृपानिधे! यहाँ चक्षुपाल नाम एक अन्ध भिक्षु ने टहलने के बहाने से अनेक जीवों को पैरों से दबा कर मार डाला है। यह कर्म महात्माओं को उचित नहीं है। उसे उचित दण्ड देना चाहिये, जिससे फिर कभी न करे। यह समाचार सुन कर स्वयं अन्तर्यामी होने से भी सब के संशय दूर करने के लिये चक्षुपाल को अपने सामने बुला कर पूंछा कि कहो चक्षुपाल! तुमने जान बूझ कर क्यों जीवघात किया? उत्तर में चक्षुपाल ने कहा—आप तो खुद ही अन्तर्यामी हैं तथापि अपना मानसिक हाल सुनाऊंगा। एक तो मैं दोनों नेत्रों से

हीन हूं इससे मुझे वे जीव देख न पड़े । दूसरे यहाँ पर कोई जीव है या नहीं सो भी मुझको ज्ञान न था । मेरे हृदय में भी उन जीवों के मारने का अभिप्राय न था । इस पर भी जो कुछ अपराध हो सो उपदेश कीजिये उसे मैं विनयपूर्वक स्वीकार कर लूंगा। इसी प्रकार चक्षुपाल का सच्चा उत्तर सुन कर भगवान् ने आगन्तुक भिक्षुओं को उपदेश किया कि—

मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया
मनसाचे पदुट्ठेन भासति वा करोतिवा
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कं व वहतो पदं ॥१॥

अर्थ—संस्कार धर्म से मन पूर्वगामी है और मन श्रेष्ठ है और मनोमय है (पाप और पुण्य मन से ही होता है इससे मन प्रधान है) यदि दुष्ट मन से मिथ्या वचन कहे और प्राणहिंसादि करे तो गाड़ी के बैलों के पीछे जैसे पहिया चलता है वैसे पाप भी कर्त्ता के पीछे पीछे चलता है ॥ १ ॥

तात्पर्य—इस श्लोक में जो धर्म शब्द है उससे गुण प्रयत्न देशना और निःसत्व निर्जीव अर्थ का भी बोध होता है परन्तु बुद्धघोषाचार्य्य ने धम्मपद की टीका में लिखा है कि "तेसु इमस्मिं ठाने निसत्तनिजीवधम्मो अधिप्पेतो" अर्थात् उन चारों में से निस्सत्व निर्जीव वाचक धर्म शब्द को ही ग्रहण करना । फिर आपने लिखा कि "धम्माति वेदनादि खन्धातयं" अर्थात् धर्म नाम वेदनादि स्कन्धत्रय को जानना । जैसे सुख और दुःख के अनुभव मात्र को वेदना, उसके समुदाय को स्कन्ध कहते हैं तथा नील पीत इत्यादि वस्तुओं का संकेत वा ज्ञानमात्र की संज्ञा उसके समुदाय को स्कन्ध और पुण्य पाप को संस्कार उनके समुदाय को स्कन्ध कहते

हैं। इन तीनों को ही स्कन्धत्रय कहते हैं। इसके अनुसार यदि हिन्दी में अनुवाद किया जाय तो पाठकों को समझने में बहुत कुछ फेरफार हो जायगा इसलिये मैंने केवल संस्कार ही अर्थ किया। इसमें कोई विरोध भी नहीं दीखता क्योंकि धम्मसङ्गणी नाम ग्रन्थ में भगवान् ने कहा—"कुसला धम्मा अकुसला धम्मा अव्याकता धम्माति" अर्थ—पुण्य जो धर्म और पाप जो धर्म पुण्य वो पाप से विपरीत जो धर्म है। इस महावाक्य में कुशल धर्म और अकुशल धर्म शब्द करके पूर्वोक्त वेदना, संज्ञा और संस्कारों को भी संगृहीत कर दर्शाया है। इससे धर्म शब्द का संस्कारत्व भी सिद्ध हो गया। अब रह गया मन और धर्म में कितना अन्तर है? रूपादि विषय के विशेष ज्ञान को मन और मन के अनुवर्त्तक स्वभाव वेदना संज्ञा सस्कारों को धर्म कहते हैं जैसे—

एकुपादनिरोधा च एकालम्बणावत्थुका।
चेतोयुत्ता द्विपञ्ञास धम्मा चेतसिका मता॥१॥

अर्थ—एक साथ उत्पत्ति, एक साथ ही निवृत्ति, एक विषयक और एक ही आश्रय करके युक्त ५२ प्रकार के धर्म को चित्त का जानो। इस प्रमाण से मन और धर्म का सहचर होना सिद्ध हुआ परन्तु छाया और पुरुष की तरह भगवान् ने मन को ही प्रधान करके उपदेश किया था अर्थात् पुरुष के साथ साथ छाया की उत्पत्ति और निवृत्ति होने से भी प्रत्यक्ष में पुरुष की ही प्रधानता मानी जाती है। इसी तरह से यहाँ भी मन की प्रधानता मानी गई।

मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया
मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा
ततो नं सुखमन्वेति छायाव अनुपायिनी॥२॥

अर्थ—शुभाशुभ संस्कार मन पूर्वगामी, मन प्रधान और मनोमय है। यदि प्रसन्न मन से स्तुति करें अथवा दानादि करें तो वह पुण्य साथ चलने वाली परछाईं के समान कर्त्ता के पीछे चलता है ॥ २ ॥

अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे
ये च तं उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति ॥३॥

अर्थ—इसने मुझे गाली दी, इसने मुझ को मारा, इसने मुझे जीत लिया, इसने मेरा धन हर लिया; इसी प्रकार जो नर शत्रु की अवज्ञा (अपमान) को मन में रखता है उस मूर्ख के चित्त से विरोध नहीं छुटता है ॥ ३ ॥

अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे
ये च तं नूपनय्हन्ति वेरं तेसूपसम्मति ॥ ४ ॥

अर्थ—इसने मुझ को गाली दी, इसने मुझे मारा, इसने मुझे जीत लिया, इसने मेरा धन चुरा लिया, इसी प्रकार जो नर अपने मन में शत्रु के अपमान को नहीं रखते हैं उनकी शत्रुता आप ही नष्ट अर्थात् छुट जाती है ॥ ४ ॥

न हि वेरेण वेराणि सम्मन्तीध कुदाचनं
अवेरेण च सम्मन्ति एस धम्मो सनातनो॥५॥

अर्थ—इस लोक में झगड़े से झगड़ा कहीं भी नहीं छुटता है परन्तु झगड़ा मित्र भाव से ही छुट जाता है। यही सनातन धर्म है ॥ ५ ॥

परेच न विजानन्ति मयमेत्थ यमामसे
ये च तत्थ विजानन्ति ततो सम्मन्ति मेधगा ॥६॥

अर्थ—इन भिक्षु गणों के बीच में हम लोगों ने विवाद प्रारंभ किया (ऐसा) दूसरे पक्षवाले (अपना अपराध) नहीं समझते हैं और जो लोग इस भिक्षु गण में हम लोगों ने विवाद खड़ा किया था (ऐसा अपना अपराध) मान लेते हैं, इससे सब विवाद दूर हो जाता है ॥६॥

तात्पर्य्य यह है कि विवाद में किसी एक पक्ष वाला अपना अपराध स्वीकार कर क्षमा मांगे तो सब बखेड़ा दूर हो जाता है ।

सुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु असंवुत्तं
भोजनह्मि च मत्तञ्ञुं कुसितं हीनविरियं
तं वे पसहति मारो वातो रुक्खं व दुब्बलं ॥७॥

अर्थ—विषयवासनाओं को शुभ मानने वाला, दश इन्द्रियों से अरक्षित, भोजन में प्रमाण का विचार न करता हुआ, आलसी तथा उत्साहहीन-ऐसे योगी पुरुष को, जैसे प्रचण्ड वायु दुर्बल वृक्ष को जड़ से उखाड़ देती है वैसे ही, कामदेव तपोभ्रष्ट करता है ॥ ७ ॥

असुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु सुसंवुत्तं
भोजनह्मि च मत्तञ्ञुं सद्धं आरद्धविरियं ।
तं वे नप्पसहति मारो वातो सेलं व पब्बतं ॥८॥

अर्थ—जैसे वायु अचल पर्वत को नहीं डुला सकती है वैसे ही कामदेव विषयवासना में अशुभदर्शी-जितेन्द्रिय-मितभोजी (विचार से भोजन करने वाले) और श्रद्धा उत्साहयुक्त, पराक्रमी पुरुष को नहीं डुला सकता है ॥ ८ ॥

अनिक्कसावो कासावं यो वत्तं परिदहिस्सति
अपेतो दमसच्चेन न सो कासावमहरति ॥६॥

अर्थ—इन्द्रियदमन और सत्य वचन से रहित, तृष्णारूपी कषाय रसों से भरा हुआ जो अधम नर काषाय वस्त्र धारण करता है वह पापी काषाय वस्त्र के अयोग्य है ।

यो च वन्तकसावस्स सीलेसु सुसमाहितो
उपेतो दमसच्चेन स वे कासावमहरति ॥१०॥

अर्थ—जो जितेन्द्रिय, सत्यवक्ता हो और शिक्षा-शील-युक्त । (अर्थात् आचार विचारवान्) विषय वासना से रहित हो, उसी सज्जन को काषाय वस्त्र पहिरना योग्य है ॥१०॥

असारे सारमतिनो
सारे चासारदस्सिनो
ते सारं नाधिगच्छन्ति
मिच्छासंकप्पगोचरा ॥११॥

अर्थ—जो नर असार अर्थात् साररहित नास्तिकादि मत में सार अर्थात् पुण्य और मुक्ति को मानें और सार अर्थात् सनातन धर्म में असार अर्थात् मिथ्या कल्पना करें वे अज्ञानी लोग निर्वाण को नहीं पहुंचते हैं ॥११॥

सारं च सारतो ञत्वा
असारं च असारतो
ते सारं अधिगच्छन्ति
सम्मासंकप्पगोचरा ॥१२॥

अर्थ—जो नर सनातन (कर्मवादी) धर्म को भक्तिपूर्वक विश्वास करते हैं और नास्तिक धर्म का विश्वास नहीं करते वे सम्यक दृष्टि वाले विद्वान् लोग ही निर्वाण (मुक्ति) को प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

यथा आगारं दुच्छन्नं
वुट्ठी मे समति विज्भति
एवं अभावितं चित्तं
रागो समति विज्भति ॥१३॥

अर्थ—जैसे अच्छी तरह से जो घर छाया नहीं गया है उसमें बरसात का पानी टपकता है वैसे ही अशुभ योग से असाधित योगी के मन को कामदेव शीघ्र ही वेध देता है ॥ १३ ॥

मल मूत्र से भरे हुए इस देह को सदा अशुभ देखना विचारना उस योग का नाम अशुभ भावना कहते हैं।

यथा आगारं सुच्छन्नं
वुट्ठी न समति विज्भति

एवं सुभावितं चित्तं
राग़ो न समति विज्झति ॥१४॥

अर्थ—जैसे अच्छी तरह से छाये हुए घर में वृष्टि नहीं वेधती है वैसे ही शुभ भावना से अनेक वार साधित योगी के मन को कामदेव नहीं डुला सकता है ॥१४॥

इध सोचति पेच्च सोचति
पापकारी उभयत्थ सोचति
सो सोचति सो विहञ्ञति
दिस्वा कम्मं किलिट्ठमत्तनो ॥१५॥

अर्थ—पाप करने वाला इस लोक, परलोक और उभय लोक में पछताता है। अपना पाप कर्म देख कर हाय हाय करके खेद और निन्दा करने लगता है ॥१५॥

इध मोदति पेच्च मोदति
कतपुञ्ञो उभयत्थ मोदति
सो मोदति सो पमोदति
दिस्वा कम्मं विसुद्ध मत्तनो ॥१६॥

अर्थ—पुण्यात्मा इस लोक, परलोक और दोनों लोक में हर्ष युक्त होता है। वह अपने पवित्र कर्म को देख कर बारंबार हर्षानन्द को पाता है ॥१६॥

इध तप्पति पेच्च तप्पति
पापकारी उभयत्थ तप्पति
पापं मे कतन्ति तप्पति
भियो तप्पति दुग्गतिं गतो ॥१७॥

अर्थ—पापी जन इस लोक, परलोक तथा उभय लोक में दुःख पाता है। मैंने पाप किया ऐसा शोच कर दुःख पाता और अधिक पछतावा करने से नरक योनि में पड़ता है ॥ १७ ॥

इध नन्दति पेच्च नन्दति
कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति
पुञ्ञं मे कतंति नंदति
भियो नंदति सुगतिं गतो ॥ १८ ॥

अर्थ—पुण्यात्मा इस लोक, परलोक तथा दोनों लोकों में आनंदित रहता है। मैंने अमुक पुण्य किया ऐसा विचार कर सदा आनन्दित रहता है। (अन्त में) स्वर्गवास पाता है ॥ १८ ॥

बहुं पि चे संहित भासमानो
न तक्करो होति नरोपमत्तो
गोपो व गावो गणायं परेसं
न भागवा सामञ्ञस्स होति ॥१९॥

अर्थ—जो विद्वान् बहुत से पारमार्थिक उपदेश दूसरे को सिखाता है यदि प्रमाद से या आलस्य से उस उपदेश के अनु-

सार आप आचरण नहीं करता वह मूढ़, दूसरे की गायों को एक दो तीन आदि गणना करके चराने वाले ग्वाले के समान, धर्म के मुख्य स्वाद को नहीं लेने पाता है अर्थात् चरवाहा केवल गौ को चराने का अधिकारी है परन्तु गोरस (दूध) खाने का अधिकार उस के भाग्य में नहीं है॥ १९॥

अप्पम्पि चे संहित भासमानो
धम्मस्स होति अनुधम्मचारी
रागं च दोसं च पहाय मोहं
सम्पजानो सुविमुत्तचित्तो
अनुपादियनो इध वा हुरं वा
स भागवा सामञ्ञस्स होति॥ २०॥

अर्थ—यदि हितकारक धर्म थोड़ा जानता हो तथा दूसरे को भी उपदेश करता हो और उस धर्म के अनुसार आप भी आचरण करता हो वह विद्वान् पुरुष राग, द्वेष और मोह को त्यागकर यथार्थ ज्ञानी विमुक्तात्मा हो तथा इस लोक परलोक की आशा रूपी डोरी को तोड़ परमे [illegible] ुक्तिमार्ग का भागी हो जाता है॥ २०॥

यमक वग्ग १

अपमादो अमतं पदं पमादो मच्चुनोपदं ।
अपमत्ता न मियन्ति ये पमत्ता मता यथा ॥१॥

अर्थ—धर्म में जागते रहना मुक्ति प्राप्ति का मुख्य कारण है। धर्माचरण में आलस्य होना अर्थात् धर्म को भूल जाना मृत्यु का अर्थात् संसारचक्र में भ्रमने का मुख्य कारण है जैसे मूर्ख लोग पछतापे से प्राण त्याग करते हैं वैसे जागरणशील धर्मात्मा लोग नहीं मरते हैं ॥ १ ॥

एवं विसेसतो ञत्वा अप्पमादम्हि पण्डितो ।
अप्पमादे पमोदन्ति अरियानं गोचरे रता ॥२॥

अर्थ—इसी प्रकार प्रमाद और अप्रमाद दोनों धर्मों में विशेष लाभ-हानि को जान कर पंडितजन आर्य्यों के माननीय सनातन धर्म का आचरण करने में सदा प्रसन्न रहते हैं अर्थात् आलस्य छोड़ कर धर्मकार्य्य में सदा लगे रहते हैं ॥ २ ॥

ते झायिनो साततिका निच्चं दल्हपरक्कमा ।
फुसन्ति धीरा निब्बाणं योगक्खेमं अनुत्तरं ॥३॥

अर्थ—ध्यायी, सात्विक तथा दृढ़ पराक्रमी विद्वान् लोगों को ही मोह तृष्णादि से सून्य अभय स्थान परमोत्तम मुक्तिपद का लाभ होता है ॥ ३ ॥

उट्ठानवतो सतिमतो
सुचिकम्मस्स निसम्मकारिणो

सञ्ञतस्स च धम्मजीविनो
अप्पमत्तस्स यसोभि वड्ढति ॥ ४ ॥

अर्थ—जागरणशील, स्मृतिमान्, सदाचारी, अग्रशोची, जितेन्द्रिय और जिस के धर्मपूर्वक जीविका हो ऐसे निरालसी योगीगण का यश और कीर्त्ति दिन दिन बढ़ती जाती है ॥ ४ ॥

उठ्ठानेनऽपमादेन संयमेन दमेन च ।
दीपं करियाथ मेधावी यं ओघो नाभिकिरति ॥ ५

अर्थ—जिस द्वीप को तृष्णा मोह रूपी बाढ़ नहीं बहा सकता है ऐसे निर्वाण महाद्वीप को विद्वान् जन उद्योग, अप्रमाद, संयम और इन्द्रियदमन करके साधन कर लेता है ॥ ५ ॥

पमादमनुयुञ्जन्ति बाला दुमेधिनो जना ।
अप्पमादं च मेधावी धनं सेट्ठं व रक्खति ॥ ६ ॥

अर्थ—मन्द बुद्धि वाले मूर्ख लोग धर्म कार्य्य को भूल के विषय-वासना ही में लगे रहते हैं किन्तु पंडित जन अमूल्य रत्न के समान धर्म की रक्षा करते हैं ॥ ६ ॥

मा पमादमनुञ्जेथ मा कामरतिसन्थवं ।
अप्पमत्तो हि झायन्तो पप्पोति विपुलं सुखं ॥ ७

अर्थ—हे शिष्य गण ! धर्म कार्य्य में आलस्य मत करो और विषय भोग में भी मन को न लगाओ । आलस्य छोड़ कर रात दिन ध्यान करने से बहुत सुखों की खानि रूप मोक्ष का लाभ होता है ॥ ७ ॥

पमादं अपमादेन यदा नुदति परिडतो
पञ्ञापासादमारुह्य असोको सोकिनी पजं
पब्बतट्ठो व भुम्मट्ठे धीरो बाले अवेक्खति ॥८॥

अर्थ—चतुर योगी जिस समय पवित्र ज्ञान द्वारा अविद्या (मोह) को हटा देता है उस समय जैसे सुचतुर मनुष्य पर्वत पर चढ़ कर मन्दबुद्धि वाले मूर्खों को पृथ्वी पर धसे हुए देखता है, वैसे ही वह योगी ज्ञान-प्रासाद पर पहुँच कर प्रजा वर्ग को शोक से संतप्त देखता है ॥ ८ ॥

अपमत्तो पमत्तेसु सुत्तेसु बहुजागरो।
अबलस्सेव सीघस्सो हित्वा याति सुमेधसो॥९॥

अर्थ—जैसे शीघ्रगामी घोड़ा मन्दे घोड़े को पछाड़ कर आगे बढ़ जाता है वैसे ही उद्योगी पुरुष मोह निद्रा में निमग्न विषयी लोगों को पीछे कर आप जागृत योग बल से शीघ्र ही चला जाता है ॥ ९ ॥

अप्पमादेन मघवा
देवानं सेठतं गतो।
अप्पमादं पसंसन्ति
पमादो गरहितो सदा ॥१०॥

अर्थ—इन्द्रदेव ने आलस्यरहित जागरण शक्ति से ही सब देवताओं में श्रेष्ठता (राजत्व) को प्राप्त किया है। अतएव पण्डित लोग आलस्यरहित जागरण धर्म की प्रशंसा और प्रमादवश मोहनिद्रा की निन्दा किया करते हैं ॥१०॥

अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयदस्सी वा
संयोजनमणुथूलं डहं अग्गिव गच्छति ॥११॥

अर्थ जागृत और मोहनिद्रा का भयदर्शी (योगी गण) प्रज्वलित अग्निखण्ड के समान (अपने निर्मलज्ञान द्वारा) सूक्ष्म स्थूल मोहतृष्णा का नाश करता हुआ (निर्वाण) को चला जाता है ॥११॥

अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयदस्सी वा
अभब्बो परिहानाय निब्बानस्से व सन्तिके॥१२॥

अर्थ—जागरणशील, व्यसन में भयदर्शी, योगी धर्मभ्रष्ट होने के योग्य नहीं है। उसको निर्वाण के समीप समझना चाहिये ॥ १२ ॥

अप्पमाद वग्गो २

फन्दनं चपलं चित्तं दुरक्खं दुनिवारयं
ऊजुं करोति मेधावी ऊसूकारो व तेजनं ॥१॥

अर्थ—जैसे तीर चलाने वाला एक आंख को दबा कर बाण को सीधा चलाता है वैसे ही योगी स्फन्दन चंचल, दुर्लक्ष्य, दुर्निवार्य्य अपने मन को सीधा कर लेता है ॥ १ ॥

वारिजो व थले खित्तो ओकमो कतऊब्बतो ।
परिफन्दतीदं चित्तं मारधेयं पहातवे ॥२॥

अर्थ—जैसे जलचर (मछली) जल से निकाल कर स्थल (भूमि) में रखने से कम्पती रहती है वैसे ही कामदेव के मोह जाल को तोड़ने के लिये अथाह तृष्णा जल से निकाल कर योग भूमि पर रखने से यह दुष्ट मन भी बराबर कम्पता रहता है ॥ २ ॥

दुन्निगहस्स लहुनो यत्थकामनिपातिनो ।
चित्तस्स दमतो साधु चित्तं दन्तं सुखावहं ॥३॥

अर्थ—दुर्निग्रह, शीघ्रगामी, जहां तहां भड़कने वाले मन का दमन होजाने से कल्याण है; (क्योंकि) दमन किया हुआ मन सुख को देता है ॥ ४ ॥

सुदुद्दसं सुनिपुणं यत्थकामनिपातिनं ।
चित्तं रक्खेथ मेधावी चित्तं गुत्तं सुखावहं ॥४॥

अर्थ—बड़ी कठिनता से ज्ञानगोचर अत्यन्त सूक्ष्म जहां तहां (रूपादि विषय में) विचरने वाले मन को पण्डित जन सावधानी से रक्खो (क्योंकि) सुरक्षित मन सुख को देता है ॥ ४ ॥

दूरङ्गमं एकचारं असरीरं गुहासयं ।
ये चित्तं संयमेस्सन्ति मोक्खन्ति मारबन्धना ॥५॥

अर्थ सुदूर गामी (अनेक विषय में भटकने वाले) अकेले विचरने वाले, निराकार और शरीर गुफा में रहने वाले इस मन को जो लोग संयम से वश में कर लेते हैं वे संसार-बन्धन से छूट जाते हैं ॥ ५ ॥

अनवट्ठित चित्तस्स सद्धम्मं अविजानतो ।
परिप्लवपसादस्स पञ्ञा न परिपूरति ॥ ६ ॥

अर्थ—अनवस्थित चित्त, भक्ति श्रद्धा से हीन योगियों को धर्म का यथार्थ बोध न होने से प्रज्ञा (विशेष ज्ञान) नहीं होती है अर्थात् वे सदा अज्ञान कूप में पड़े रहते हैं ॥ ६ ॥

अनवस्सुतचित्तस्स अनन्वाहतचेतसो
पुञ्ञपापपहीनस्स नत्थि जागरतो भयं ॥ ७

अर्थ—जिसको तृष्णा की तीव्र धारा नहीं व्यापती और जिसका मन क्रोध के तीक्ष्ण शस्त्र से आहत नहीं होता तथा पुण्य पाप दोनों का त्यागने वाला होता है उसको (मोह रूपी कराल निद्रा से) जागने के कारण जन्म मरण का भय नहीं रहता है ॥ ७ ॥

कुम्भूपमं कायमिमं विदित्वा
नगरूपमं चित्तमिदंठपेत्वा ।

योजेथ मारं पञ्ञायुधेन
जितं च रक्खे अनिवेसिनो सिया ॥ ८ ॥

अर्थ—हे योगी गण! (क्षणभंगी सारविहीन) इस देह को घट के समान मान कर तथा (अपने) मन को नगर के समान जान के प्रज्ञा शस्त्र से संसार शत्रु कामदेव के साथ घोर युद्ध करो। जीती हुई नवीन समाधि का सावधानी से प्रतिपालन करो परन्तु उस समाधि में आसक्त न हो। अर्थात् अपनी प्राप्त हुई समाधि में ममता करने से शीघ्र ही तपोभ्रष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

अचिरं वत यं कायो पथविं अधिसेस्सति ।
छुद्धो अपेतविञ्ञानो निरत्थं व कलिङ्गरं ॥६॥

अर्थ—हे शिष्य गण! अवश्य कुछ काल में सड़ी लकड़ी के समान यह शरीर तुच्छ जीव रहित हो कर भूमिशय्या पर लेट जायगा ॥ ॥

दिसो दिसं यन्तं कयिरा वेरी वा पन वेरिणं ।
मिच्छा पणिहितं चित्तं पापियो नं ततो करे ॥१०

अर्थ—हे शिष्य गण! (परस्पर विरोध होने से) एक चोर दूसरे को या एक शत्रु दूसरे शत्रु को जिस तरह हो हानि पहुँचाता है उससे भी अधिक मिथ्या कल्पित स्वीय मन आत्मा को महापातकी बना देता है ॥ १० ॥

न तं माता पिता कयिरा अञ्ञेवापि च ञातका ।
सम्मापणिहितं चित्तं सेय्यसो नं ततो करे ॥११॥

अर्थ—वह कार्य्य माता पिता और ज्ञाति बन्धु कोई भी नहीं कर सकते हैं जो सत् विचार से रखा हुआ मन योगियों को अधिक श्रेष्ठ बना देता है ॥ ११ ॥

चित्तवग्ग ३

को इमं पथविं विजेस्सति
यमलोकं च इमं सदेवकं।
को धम्मपदं सुदेसितं
कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति ॥ १ ॥

अर्थ—जैसे चतुर माली (अनेक प्रकार के फूलों में से अपने इच्छित) फूलों को चुन लेता है वैसे कौन मनुष्य आत्मरूपी इस पृथ्वी को जान सकता है ? और कौन मनुष्य देवलोक, यमलोक समेत इस मृत्यु लोक का मर्म भेद जान सकता है ? तथा बुद्धोपदेशित इस धर्मपद के परीक्षार्थ बातों को भी कौन योगी प्राप्त कर सकता है ? ॥ १ ॥

सेखो पथविं विजेस्सति
यमलोकं च इमं सदेवकं।
सेखो धम्मपदं सुदेसितं
कुसलो पुप्फमिव विचेस्सति ॥२॥

अर्थ—निर्वाणगामी, सत्मार्ग में नियत रूप से स्थित सेख नाम भिक्षुगण ही आत्मरूपी पृथ्वी का मर्म भेद तथा यमलोक देव लोक सहित मृत्यु लोक का भी ज्ञान कर सकते हैं। जैसे चतुर माली फूलों को चुन लेता है वैसे सेख भिक्खु (योगी) गण भी बुद्धोपदेशित धर्म पुञ्ज में से अपना अनुकूल उपदेश चुन लेते हैं ॥ २ ॥

पुप्फानिहेव पचिनन्तं व्यासत्तमानसं नरं ।
सुत्तं गामं महोघोव मच्चुआदाय गच्छति ॥३॥

अर्थ—जैसे नदी की बाढ़ ग्राम को सोते हुए लोगों के साथ बहा ले जाती है और जिस तरह (अनेक प्रकार के फूलों से भरे हुए बाग़ में से) माली फूलों को चुन ले जाता है वैसे ही विषयवासना में आसक्त मूर्खों को यमराज मार कर नरक में ले जाता है ॥ ३ ॥

पुप्फानिहेव पचिनन्तं व्यासत्तमानसं नरं ।
अतित्तं ये व कामेसु अन्तको कुरुते वसं ॥४॥

अर्थ—फूल चुनने वाले माली के समान विषयाशक्त काम भोग से अतृप्त मूढ़ जनों को यमराज या कामदेव अपने वश में कर लेता है ॥ ५ ॥

यथा पि भमरो पुप्फं वण्णगन्धं अहेठयं ।
पलेति रसमादाय एवं गामे मुनिचरे ॥ ६ ॥

अर्थ—जैसे भ्रमर (भौंरा) फूलों के रूप और गन्ध को बचा कर (बिना हानि पहुंचाये) पुष्प रस ले कर चला जाता है वैसे ही भिक्षु गण को गृहाश्रमों की भक्ति, श्रद्धा, धन, सम्पत्ति का नाश न करके भिक्षा मात्र लेकर चले जाना चाहिये ॥६॥

न परेसं विलोमानि न परेसं कताकतं ।
अत्तनोव अवेक्खेय्य कतानि अकतानि च ॥ ७

अर्थ—दूसरों के पाप कर्म को न देखना दूसरों का किया हुआ कर्म और न किया हुआ कर्म का भी न विचार करना चाहिए ।

अपना किया हुआ कर्म और न किया हुआ कर्म काही विचार करना चाहिये ॥ ७ ॥

यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवन्तं अगन्धकं ।
एवं सुभासिता वाचा अफला होति अकुब्बतो॥८

अर्थ—जैसे मनोहर फूल सुगन्धि बिना निष्प्रयोजन होता है वैसे सदुपदेश भी उत्तम आचरण बिना निस्फल होजाता है ॥ ८ ॥

यथा पि रुचिरं पुप्फं वण्णवन्तं सगन्धकं ।
एवं सुभासिता वाचा सफला होति कुब्बतो॥६॥

अर्थ—जैसे मनोहर फूल सुवास होने से सब का आदरणीय होता है वैसे सदुपदेश भी उत्तम आचरण करने से सफल होता है ॥ ९ ॥

यथापि पुप्फरासिम्हा कयिरा मालागुणे वहू ।
एवं जातेन मच्चेन कातव्वं कुसलं वहू ॥१०॥

अर्थ—जैसे (चतुरमाली) अनेक प्रकार के फूलों में से (चुन कर) सुन्दर माला तय्यार कर लेता है वैसेही मनुष्य मात्र को बहुत से पुण्यों को संग्रह कर लेना चाहिये ॥ १० ॥

न पुप्फगन्धो पटिवातमेति
न चन्दनं तग्गरमल्लिका वा ।
सतं च गंधो पटिवातमेति
सब्बा दिसा सप्पूरिसो पवायति ॥११॥

अर्थ—चन्दन, तगर और मल्लिका इत्यादि फूलों की सुवास वायु से विपरीत (उलटी) नहीं जा सकती है लेकिन सज्जनों का यश व कीर्त्ति वायु से विपरीत भी जाती है और सज्जनों का गुण सब दिशा में व्यापता है ॥ १० ॥

चन्दनं तग्गरं वापि उपलं अथ वस्सिकी ।
एतेसं गन्धजातानं सीलगन्धो अनुत्तरो॥११॥

अर्थ—चन्दन, तग्गर और नीलकमल, वेली इत्यादि फूलों की सुवास से सज्जनों की सदाचार रूपी सुवास ही उत्तम है ॥ ११ ॥

अप्पमत्तो अयं गन्धो यायं तग्गरचन्दनं ।
यो च सीलवतं गन्धो वाति देवेसु उत्तमो ॥१२॥

अर्थ—तगर, हरिचन्दनादि की सुवास अति अल्प मात्र है परन्तु सज्जनों की यश रूपी सुवास देवलोक में भी व्यापती है ॥ १२ ॥

तेसं सम्पन्नसीलानं अप्पमादविहारिनं ।
सम्मादञ्ञाविमुत्तानं मारोमग्गंनविन्दति ॥१३

अर्थ—सदाचारी, निरालसी तथा जिन्हों ने अपने मन को विषयवासना से हटा लिया है ऐसे महात्माओं की गति को कामदेव भी नहीं जान सकता है ॥ १३ ॥

यथा सङ्कारठानस्मिं उज्झितस्मिं महापथे ।
पदुमं तत्थ जायेथ सुचिगन्धं मनोरमं ॥१४॥

अर्थ—जैसे राजमार्ग पर रक्खे हुए खाद में से अति मनोहर और सुवास युक्त पद्म (जमकर) फूल आता है ॥ १४ ॥

एवं संकारभूतेसु अन्धीभूते पुथुजने।
अतिरोचति पञ्ञाय सम्मासम्बुद्धसावको॥१५॥

अर्थ—वैसे ही अपवित्र खाद की ढेरी के समान विषयाशक्त मूर्खों के मध्य में बुद्ध भगवान् के सिद्धि प्राप्त शिष्यगण वैराग्य ज्ञान द्वारा अति शोभायमान होते हैं॥ १५॥

पुप्फवग्ग ४

दीघा जागरतो रत्ति दीघं सन्तस्स योजनं ।
दीघो बालानं संसारो सद्धम्मं अविजानतं ॥१॥

अर्थ—जागने वाले को बारह घंटे की रात्रि बड़ी मालूम होती है और थके हुए यात्री को योजन भर मार्ग बहुत दूर मालूम होता है, वैसे ही मूर्खों को संसारयात्रा बड़ी कठिन हो जाती है ॥ १ ॥

चरञ्चे नाधिगच्छेय्य सेय्यं सदिसमत्तनो ।
एक चरियं दल्हं कयिरा नत्थि बाले सहायता२

अर्थ—आप के समान या आप से बढ़ कर श्रेष्ठ मित्र की खोज करो । यदि न मिले तो अकेले ही दृढ़ता से विचरो, क्योंकि दुष्ट जन में मित्रता नहीं रहती है अर्थात् दुष्टों की संगत न करना ॥ २ ॥

पुत्तमत्थि धनमत्थि इतिबालो विहञ्ञति ।
अत्तापि अत्तनो नत्थि कुतोपुत्तो कुतोधनं ॥३॥

अर्थ—यह मेरा पुत्र है, यह मेरा धन है, ऐसा मूर्ख लोग सोचते हैं परन्तु यह विचार नहीं करते हैं कि अपना शरीर भी तो अपना नहीं है तब पुत्र और धन कैसे अपना हो सकता है ॥ ३ ॥

योबालो मञ्ञति बाल्यं पण्डितो वापि तेन सो ।
बालो च पण्डितमानी स वे बालोति वुच्चति॥४॥

अर्थ—जो मूढ़ अपनी मूर्खता को जानता है वह पण्डित कहलाता है । जो मूर्ख होकर भी अपने को पण्डित मानते हैं वही महामूर्ख हैं ॥ ४ ॥

याव जीवं पि चे बालो पण्डितं पयिरुपासति ।
न सो धम्मं विजानाति दब्बी सुपरसं यथा ॥५॥

अर्थ—जैसे करछुल हमेशा चलाते रहने पर भी व्यंजन के स्वाद को नहीं जान सकती है ऐसे ही मूर्ख लोग जीवन भर महात्माओं की सेवा में रह कर भी धर्म के मर्म को नहीं पा सकते हैं ॥ ५ ॥

मुहुत्तमपि चे विञ्ञू पण्डितं पयिरुपासति ।
खिप्पं धम्मं विजानाति जिह्वा सुपरसंयथा ॥६॥

अर्थ—जैसे जीभ स्पर्श मात्र से ही व्यंजन के स्वाद को जान लेती है, वैसे ही विद्वान् लोग क्षण मात्र महात्माओं की सेवा से शीघ्र ही धर्म के मर्म को जान जाते हैं ॥ ६ ॥

चरन्ति बाला दुमेधा अमित्तेनेव अत्तना ।
करन्तो पापकं कम्मं यं होति कटुकंफलं ॥७॥

अर्थ—जिस कर्म से कठिन दुःख होता है, दुष्ट बुद्धि वाले मूर्ख लोग शत्रु के समान अपने देह से उस पाप को करते हैं ॥ ७ ॥

न तं कम्मं कतं साधु यं कत्वा अनुतप्पति ।
यस्स अस्सुमुखो रोदं विपाकं पटिसेवति ॥८॥

अर्थ—जिस कर्म को करने से पश्चात्ताप होता है और जिस कर्म से रोरो कर फल भोगना पड़ता है ऐसे पाप कर्म को करना उचित नहीं है ॥ ८ ॥

तं च कम्मं कतं साधु यं कत्वा नानुतप्पति ।
यस्सपीतितो सुमनो विपाकं पटिसेवति ॥९॥

अर्थ—वह कर्म अच्छा है जिसको करने से पश्चात्ताप नहीं होता तथा जिसके फल आनन्द के साथ भोगता है ॥ ९ ॥

मधुव मञ्ञति बालो याव पापं न पच्चति ।
यदा च पच्चति पापं बालो दुक्खं निगच्छति ॥१०॥

अर्थ—जब तक पाप अपने परिणाम को नहीं पहुँचता तब तक मूर्ख को (दुष्ट कर्म में) मधु चखने के समान स्वाद मिलता है । जब पाप अपने परिणाम को पहुँचता है तब मूर्ख को घोर दुःख भोगना पड़ता है ॥ १० ॥

मासे मासे कुसग्गेन बालो भुञ्जेय्य भोजनं ।
न सो संखातधम्मानं कलं नग्घति सोळसिं ॥११॥

अर्थ—जो मूर्ख (चान्द्रायणादि व्रत धारण करके) महीने महीने पर एक बार ही कुश के अग्रभाग से भोजन करें (परन्तु) उसका ऐसा कठिन तप, ज्ञानियों के शुद्ध व्रत के सोलहवें भाग को भी नहीं पहुँचता है ॥ ११ ॥

नहि पापं कतं कम्मं सज्जुखीरं व मुच्चति ।
डहन्तं बालमन्वेति भस्माछन्नो व पावको ॥१२॥

अर्थ—यद्यपि तत्काल किया हुआ पाप नवीन दूध के समान शीघ्र विकार को नहीं पहुँचता परन्तु वह पाप भस्म से ढपे हुए अग्नि के समान (धीरे धीरे सुलग कर) पापियों के पीछे पीछे चलता है अर्थात् दुःख देता है ॥ १२ ॥

यावदेव अनत्थाय ञत्तं बालस्स जायति ।
हन्ति बालस्स सुक्कंसं मुद्धमस्स निपातयं ॥१३॥

अर्थ—मूर्ख को शास्त्र और शिल्पादि विद्या का लाभ होना या सीखना केवल उसके अनर्थ के लिए ही होता है। वह विद्या उसके प्रज्ञा रूप मस्तक को हानि करती हुई सम्पूर्ण भाग्यांश का नाश कर देती है॥ १३॥

असतं भावनमिच्छेय्य पुरक्खारञ्च भिक्खुसु।
आवासेसु च इस्सरियं पुजा परकुलेसु च॥१४॥

अर्थ—मूर्ख भिक्खु गुणहीन होने पर भी गुण की चाह रखता है और भिक्खुओं से पुरस्कार आश्रमों (मठ) में अधिकार तथा गृहाश्रमों से पूजा और सत्कार चाहता है॥ १४॥

ममे व कतमञ्ञन्तु गिहिपब्बज्जिता उभो।
ममेवातिवसा अस्सु किच्चाकिच्चेसु किस्मिचि।
इतिबालस्ससंकप्पो इच्छामानोचवड्ढति॥१५॥

अर्थ—इसी प्रकार गृही और संन्यासी मेरे काम को अनुमोदन करें। छोटे बड़े सब काम में मेरी आज्ञानुसार चलें। ऐसे ही मूर्ख भिक्खु की इच्छा और ममता दिन रात बढ़ती जाती है॥ १५॥

अञ्ञा हि लाभूपनिसा अञ्ञा निब्बानगामिनी।
एवमेतं अभिञ्ञाय भिक्खु बुद्धस्स सावको।
सक्कारं नाभिनन्देय्य विवेकमनुब्रूहये॥१६॥

अर्थ—लाभ और सत्कार में आशा रखना अन्य मार्ग है और मोक्ष जाने की योगभूमि दूसरा मार्ग है। इसी प्रकार दोनों में विशेष जानकर बुद्ध भगवान् के शिष्य भिक्खुओं को लाभ और सत्कार की आशा छोड़ कर विवेक ज्ञान को बढ़ाना चाहिए॥ १६॥

बालवग्ग ५

निधिनं व पवत्तारं यंपस्से वज्जदस्सिनं ।
निग्गह्य वादिं मेधाविं तादिसं पण्डितं भजे ।
तादिसं भजमानस्स सेय्यो होति न पापियो ॥१॥

अर्थ—पृथ्वी में गड़े हुए निधि कुम्भ को दिखानेवाले के समान दोष दिखाकर उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुष का भजन करो । ऐसे पण्डितों की सेवा करने वाले का कल्याण होता है हानि नहीं होने पाती । अर्थात् किसी दरिद्री को भूमि में गड़े हुए अदृश्य (गुप्त) सुवर्ण भरे घड़े को दिखा देने से उस दरिद्र को कितना लाभ और उपकार होता है उसी तरह गुप्त पाप को दिखा कर परिशोधक प्रायश्चित्तादि से उपदेश देने से महा लाभ होता है ॥ १ ॥

ओवोदेय्या नुसासेय्य असब्भाच निवारये ।
सतं हिसो पियो होति असतं होति अपियो॥२॥

अर्थ—उपदेश करना अनुशासन करना और पापकर्म से निवारण करना सज्जनों के लिये प्रिय और दुष्टों के लिये अप्रिय होता है। अर्थात् उपदेशक सज्जनों का प्यारा और दुष्टों का शत्रु जंचता है ॥ २ ॥

न भजे पापके मित्ते न भजे पुरिसाधमे ।
भजेथ मित्ते कल्याणे भजेथ पूरिसूत्तमे ॥३॥

अर्थ—दुष्ट मित्र और अधम पुरुष की सेवा तथा संगति कभी मत करना । कल्याण करने वाले सज्जन मित्र और श्रेष्ठ पुरुषों की सेवा और संगति अवश्य करनी चाहिये ॥ ३ ॥

धम्मपीति सुखं सेति विपसन्नेन चेतसा ।
अरियपवेदिते धम्मे सदा रमति पण्डितो ॥४॥

अर्थ—धर्म रूपी अमृत पान करने वाला पुरुष सदा प्रसन्न मन से विहार करता है। बुद्धोपदिष्ट आर्य्य धर्म में विद्वान् पुरुष सदा प्रसन्नचित्त रहता है। तात्पर्य्य यह कि बुद्धोपदिष्ट आर्य्य धर्मावलम्बी सदा प्रसन्न रहता है ॥ ४ ॥

उदकं हि नयन्ति नेत्तिका
उसुकारा नमयन्ति तेजनं।
दारुं नमयन्ति तच्छका
अत्तानं दमयन्ति पण्डिता ॥५॥

अर्थ—जैसे नहर खोदने वाले जहां चाहें इच्छा पूर्वक पानी बहा ले जाते हैं। बाण बनाने वाले इच्छानुसार सीधा कर लेते हैं तथा बढ़ई लोग लकड़ियों को गढ़ गुढ़ कर चिकनी सुथरी बना लेते हैं वैसे ही विद्वान् लोग अपने मन को साधकर सीधा कर लेते है ॥ ५ ॥

सेलो यथा एकग्घनो वातेन न समीरति।
एवं निन्दापसंसासु न समिञ्जन्ति पण्डिता॥६॥

अर्थ—जैसे अचल पहाड़ प्रचण्ड वायु से नहीं हिल सकता है वैसे ही विद्वान् लोग भी किसी की निन्दा और स्तुति से विकार को नहीं प्राप्त होते न उस पर ध्यान ही देते हैं ॥ ६ ॥

यथापि रहदो गम्भीरो विपसन्नो अनाविलो।
एवं धम्मानि सुत्वान विपसीदन्ति पण्डिता॥७॥

अर्थ—जैसे अति गम्भीर ह्रद अर्थात् जलाशय अपने स्वच्छ जल से सदा प्रसन्न रहता है, वैसे ही पण्डित लोग सदुपदेश श्रवण कर सदा प्रसन्न रहते हैं ॥ ७ ॥

सब्बत्थ वे सप्पुरिसा चजन्ति
न कामकामा लपयन्ति सन्तो।
सुखेन फुट्ठा अथवा दुखेन
न उच्चावचं पण्डिता दस्सयन्ति ॥ ८॥

अर्थ—आत्मज्ञानी सज्जन (महात्मा) लोग सब वासनाओं में विचरने वाले दुष्ट मन को त्याग देते हैं और विषय-सम्बन्धी वचन नहीं कहते। वे ज्ञानी लोग सुख और दुःख से ऊँचता नीचता नहीं दिखाते हैं ॥ ८ ॥

न अत्तहेतु न परस्स हेतु
न पुत्तमिच्छे न धनं न रट्ठं।
न इच्छेय्य अधम्मेन समिद्धिमत्तनो
स सीलवा पञ्ञवा धम्मिको सिया ॥९॥

अर्थ—जो अपने लिये अथवा अन्य के लिए पुत्र, धन, राज्य इत्यादि की कामना नहीं रखते और अधर्म करके समृद्धि (धन संग्रह करना) नहीं चाहते वही शीलवान् ज्ञानी और धर्मात्मा हैं ॥ ९ ॥

अप्पका ते मनुस्सेसु ये जना पारगामिनो।
अथायं इतरा पजा तीरमेव नुधावति ॥१०॥

अर्थ—विरले ही लोग निर्वाण रूपी अर्थात् संसार पार जाने वाले होते हैं। शेष लोग तीर ही पर दौड़ते हैं अर्थात् बीच में डूब जाते हैं ॥ १० ॥

ये च खो सम्म दक्खाते धम्मे धम्मानुवत्तिनो।
ते जना पारमेस्सन्ति मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं ॥११॥

अर्थ—जो लोग अनन्त सर्व ज्ञान से उपदेशित बुद्ध धर्म में तत्पर रहते हैं वे मृत्युराज के अधीन और अति दुस्तर संसार के पार रूपी निर्वाण पद को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

कण्हं धम्मं विपहाय सुक्कं भावेथ पण्डितो।
ओका अनोकं आगम्म विवेके यत्थ दूरमं ॥१२

अर्थ—नीच वृत्ति विषय वासना से ऊंचवृत्ति योग भूमि के प्रति पण्डित जन पाप कर्म को त्याग कर पुण्य कर्म को बढ़ावे और जिस धर्म विवेक में या मोक्ष में मूर्खों का मन बड़ी कठिनता से रमता है ॥ १२ ॥

तत्राभिरति मिच्छेय्य हित्वा कामे अकिञ्चनो।
परियोदपेय्य अत्तानं चित्तक्लेसेहि पण्डितो ॥१३

अर्थ—उस धर्म विवेक या निर्वाण में सब कामनाओं को छोड़ कर निश्चिन्त हो प्रीति को बढ़ावे और विद्वान् पुरुष चित्तक्लेश-दायक धर्मों से अपना मन शुद्ध रक्खे ॥ १३ ॥

येसं सम्बोधिअङ्गेसु सम्मा चित्तं सुभावितं।
आदानपटिनिस्सग्गे अनुपादाय ये रता।
खिणासवा जुतिमंतो ते लोके परिनिब्बुता ॥१४

अर्थ—जिन का मन स्मृति, प्रज्ञा, उत्साह इत्यादि सात प्रकार को बोध्यङ्ग* धर्म में वारम्बार भावित किया हो, और जो विषय वासना से निरालय हो कर उपाधि रहित निर्वाण में सदा आनन्दित रहते हैं, ज्योतिषमयी तृष्णाक्षीण वे ही महात्मा लोग परिनिर्वाण (मुक्त) होते हैं ॥ १४ ॥

(१) *स्मृति १ प्रज्ञा २ उत्साह ३ प्रीति ४ पश्रधी ५ समाधि ६ उपेक्षा ७

पण्डितवग्ग ६

गतद्धिनो विसोकस्स विप्पमुत्तस्स सब्बधि ।
सब्बगन्थ पहीनस्स परिलाहो न विज्जति ॥१॥

अर्थ--उत्पत्ति विनाश रूपी संसार (जगत्) यात्रा से निवृत्त हुआ शोक संताप रहित भव बन्धन आशाधर्म से विमुक्त और तृष्णारूपी जाल को जिसने तोड़ डाला ऐसा अरहन्त (परमहंस) कभी दुःखित नहीं होता है ॥ १ ॥

उय्युञ्जन्ति सतिमन्तो न निकेते रमन्ति ते ।
हंसाव पल्ललं हित्वा ओकमोकं जहन्ति ते ॥२॥

अर्थ—ध्यायी अरहन्त (परमहंस) लोग सदा समाधि अवस्था में मग्न रहते हैं । वे लोग विषय वासना में मन नहीं लगाते हैं । अपने गोचर पंक वाले स्थान को छोड़ कर सजल स्थान जाने वाले हंस के समान वे लोग भी नीचवृत्ति विषय वासना को त्याग देते हैं ॥ २ ॥

येसं सन्निचयो नत्थि ये परिञ्ञातभोजना ।
सुञ्ञतो अनिमित्तोच विमोक्खो यस्स गोचरो ।
आकासेव सकुन्तानं गति तेसं दुरन्नया ॥३॥

अर्थ—जिन लोगों ने पुण्य या पाप कुछ भी संचित नहीं करते जिन्हों ने रसना को तृष्णा (स्वाद) को भी त्याग दिया है और जिन का ज्ञान सुञ्ञत एवं अनिमित्त नाम मोक्ष में है उनकी परलोक गति का जानना निराकार आकाश में पक्षिगण की गति के समान कठिन है ॥ ३ ॥

यस्सासवा परिक्खीणा आहरेच अनिस्सिता ।
सुञ्ञतो अनमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो ।
अकासेवसकुन्तानं पदन्तस्स दुरन्नयं ॥ ४ ॥

अर्थ—जिसकी तृष्णा क्षीण हो गई हो, शेष पूर्ववत् समझिए ॥ ४॥

यस्सिन्द्रियानि समथं गतानि ।
अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता ॥
पहीनमानस्स अनासवस्स ।
देवापि तस्स पिहयन्ति तादिनो ॥५॥

अर्थ—जिस तरह सारथी रथ के घोड़ों को अच्छी तरह अपने वश में किये रहता है वैसेही जिस महात्मा ने पंच इन्द्रियों को दमन करके अपने वश में कर लिया है और अहंकार-तृष्णा को त्यागे हुए है वह देवताओं करके पूज्य होता है ॥ ५ ॥

पथवीसमो नो विरुज्झति ।
इन्दखीलुपमो तादिसुब्बतो ॥
रहदोव अपेतकद्दमो ।
संसारा न भवन्ति तादिनो ॥६॥

अर्थ—सुव्रतधारी अरहन्त योगी पृथ्वी के समान और नगर महाद्वार के अचल चौखट के समान इष्ट अनिष्ट सुख दुख का विरोधी या उस से विकारवान् नहीं होता तथा पंकरहित महासागर के समान तादृश गुणयुक्त अरहन्तों को जगत्-बन्धन नहीं होता है ।

अर्थात् हानि, लाभ, निन्दा, स्तुति यश, अपयश, सुख, दुखादि से जिसके मन में विकार नहीं होता उसे तादृश अरहन्त (परम हंस) कहते हैं ॥ ६ ॥

सन्तं तस्स मनं होति ।
सन्ता वाचा च कम्मञ्च ॥
सम्मदञ्ञा विमुत्तस्स ।
उपसन्तस्स तादिनो ॥ ७ ॥

जगत् के मर्म को अच्छी तरह जान के विमुक्त हुआ, राग द्वेषादि अग्नि जिसकी शान्त हो गई है ऐसे गुणवान् तादृश (अरहन्त) के मन वचन कर्म तीनों शान्त हो जाते हैं ॥ ७ ॥

अस्सद्धो अकतञ्ञू च ।
सन्धिच्छेदो च यो नरो ॥
हतावकासो वन्तासो ।
सवे उत्तमपुरिसो ॥ ८ ॥

जो अपने श्रेष्ठ गुणों को दूसरों पर प्रकट न करे गुप्त रक्खे, शुभाशुभ संस्काररहित निर्वाण को ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष जानें और मोह तृष्णा रूपी जगत्, सन्धि (जंजाल) को तोड़ डाले तथा संस्कार की अवधि को तोड़ दे और जगत् आशा बन्धन को त्याग दे, निश्चय करके वही श्रेष्ठ पुरुष है ॥ ८ ॥

गामेवा यदिवा रञ्ञे ।
निन्नेवा यदि वा थले ॥

यत्थ अरहन्तो विहराति।
तं भुमिं रामणेय्यकं ॥ ६ ॥

ग्राम, वन या निर्जन निम्न तथा ऊँचा स्थान हो जिस पर आशातीत भिक्षुक गण वास करते हैं वह भूमि अतिरमणीय होती है ॥ ९ ॥

रमणीयानि अरञ्ञानि।
यत्थ न रमति जनो ॥
वीतरागा रमिस्सन्ति।
न ते कामगवेसिनो ॥ १० ॥

देखो यह वन कैसा मनोहर है जिस अगम्य वन में विषयी लोग नहीं रमण कर सक्ते हैं। ऐसे तपोवन में विषय-वासना को त्यागे हुए विरागी योगी विहार करते हैं ॥ १० ॥

अरहतवग्ग ७

सहस्समपि चे वाचा ।
अनत्थपदसंहिता ॥
एकं अत्थपदं सेय्यो ।
यं सुत्वा उपसंमति ॥ १ ॥

निरर्थक सहस्र वाणी की अपेक्षा अर्थ सम्बन्धी (सार्थक) एक वचन ही श्रेष्ठ है जिसको सुन कर राग तृष्णादि शान्त हो ॥१॥

सहस्समापि चे गाथा ।
अनत्थपदसंहिता ॥
एकं गाथापदं सेय्यो ।
यं सुत्वा उपसंमति ॥ २ ॥

अनर्थक हज़ारों श्लोकों की अपेक्षा अर्थ सहित एक श्लोक ही श्रेष्ठ है जिसके सुनने से राग तृष्णादि का शमन हो ॥ २ ॥

यो सहस्सं सहस्सेन ।
संगामे मानुसे जिने ॥
एकञ्च जेय्यमत्तानं ।
स वे सङ्गामजुत्तमो ॥ ३ ॥

जिस महारथी ने संग्राम में सहस्रों से गुणित अर्थात् लाखों शत्रुओं को विजय किया है और एक योगी जिसने केवल अपने आत्मा ही को जीता है तो उन दोनों शूरों में आत्मविजयी शूर ही श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

अत्ताहवे जितं सेय्यो ।
याचायं इतरा पजा ॥
अत्तदन्तस्स पोसस्स ।
निच्चं सञ्ञतचारिनो ॥ ४ ॥

अन्य लोगों के विजय करने से अपने आत्मा को जीतना श्रेष्ठ है । नित्य संयमी आत्मविजयी ऐसे महात्मा लोग ॥ ४ ॥

नेव देवो न गन्धब्बो ।
न मारो सहब्रह्मुना ॥
जितं अपजितं कयिरा ।
तथारूपस्स जन्तुनो ॥ ५ ॥

देवता गण, गन्धर्व गण, और ब्रह्मा सहित कामदेव से भी पराजित नहीं होते हैं ॥ ५ ॥

मासे मासे सहस्सेन ।
यो यजेथ सतं समं ॥
एकं च भावितत्तानं ।
मुहुत्तमपि पूजये ॥
सायेव पूजना सेयो ।
यञ्चे वस्ससतं हुतं ॥ ६ ॥

यदि एक दाता हर महीने में हज़ारों रुपया ख़र्च करके कुपात्रों को दान देता है और दूसरे दाता ने अपने मन को जीते हुए सुपात्रों को एक वार ही दान दिया तथा सेवा सत्कार किया है, इन दोनों में वही सुपात्रों की पूजा श्रेष्ठ है परन्तु सौ वर्ष तक कुपात्रों की पूजा श्रेष्ठ नहीं है ॥ ६ ॥

यो च वस्ससतं जन्तु । अग्गिं परिचरे वने ।
एकं च भावितत्तानं । मुहुत्तमपि पुजये ।
सायेव पुजना सेय्यो । यंचे वस्ससतं हुतं ॥७॥

अगर कोई याजक वन में जाकर सौ वर्ष पर्यन्त अग्निसेवा करे (आहुति करे) और कोई भक्त केवल समाधि-अवस्था में भावित है आत्मा जिसका ऐसे सिद्धि पुरुष की मुहूर्त्त मात्र सेवा करे तो वह सेवा (चिरस्मरणीय होकर) सौ वर्ष आहुति-सेवा से श्रेष्ठ है अर्थात् वह सिद्ध महात्माओं की क्षण मात्रिक सेवा-सत्संगति से असार संसार के पार हो जाता है ॥ ७ ॥

यं किञ्चि यिट्ठं च हुतं च लोके
संवच्छरं यजेथ पुञ्ञपेक्खो ।
सब्बं पि तं न चतुभागमेति
अभिवादना ऊजुगतेसु सेय्यो ॥८॥

लोक में पुण्य की कामना से जो कुछ दान आहुति साल भर करते हैं वह सब परिशुद्धात्मा मुनियों की प्रणामादि सेवा तथा सत्संगति के चतुर्थांश भी नहीं होता है ॥८॥

अभिवादनसीलस्स निच्चं वुड्ढापचायिनो ।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयुयवण्णोसुखंबलं ॥९

अपने से गुण कर्म स्वभाव और वयस में बड़े लोगों को जो नित्य प्रणाम वन्दना सेवा सत्कारादि करते हैं उनको आयुवृद्धि शरीर, की शोभा, सुख और बल ये चार पदार्थ प्राप्त होते हैं ॥९॥

योच वस्ससतं जीवे दुस्सीलो असमाहितो ।
एकाहंजीवितं सेय्यो सीलवन्तस्स झायिनो॥१०

जो मूढ़ दुष्टचरित्र चंचल मन हो कर सौ वर्ष जीवे उससे शिक्षा-शीलयुक्त ध्यायी हो के एक दिन भी जीवित रहना श्रेष्ठ है ॥१०॥

योच वस्ससतं जीवे
दुपञ्ञो असमाहितो ।
एकाहं जीवितं सेय्यो
पञ्ञावन्तस्स झायिनो ॥११॥

जो नर दुष्ट बुद्धि चञ्चल मन होकर सौ वर्ष जीवे उससे ज्ञानी ध्यानावस्थित मन होकर एक दिन जीना ही श्रेष्ठ है ॥११॥

यो च वस्ससतं जीवे कुस्सितो हिनविरियो ।
एकाहं जीवितं सेय्यो विरियमारभतोदल्हं ॥१२

जो मूर्ख आलसी उद्योगहीन होकर सौ वर्ष जीवे उससे दृढ़ उद्योगी होकर एक दिन भी जीवे तो वही श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥

यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं उदयवयं ।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो उदयवयं ॥१३॥

जो मूर्ख जन्म मरण रूपी जगत् के घोर दुख को बिना ध्यान किये सौ वर्ष भी जीवे उससे जगत् की आद्यन्त जन्म मरण धर्म के ध्यान करते हुए एक दिन भी जीवित रहना श्रेष्ठ है॥ १३॥

यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं अमतं पदं।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो अमतं पदं॥१४॥

जो मूर्ख जन्म मरण रहित निर्वाण को समाधिस्थ ज्ञान द्वारा विना देखे सौ वर्ष जीवे इससे मुक्तिपद निर्वाण को पवित्र ज्ञान से देखते हुए एक दिन भी जीना श्रेष्ठ है॥ १४॥

यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं धम्ममुत्तमं।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो धम्ममुत्तमम्॥१५

जो मूर्ख श्रेष्ठ धर्म के जाने विना सौ वर्ष जीवे उससे श्रेष्ठ धर्म के यथार्थ को जानकर एक दिन भी जीवित रहना कल्याणकारी है॥ १५॥

सहस्सवग्ग ८

अभित्थरेथ कल्याणे पापा चित्तं निवारये ।
दन्धं हि करोतो पुणयं पापस्मिं रमति मनो ॥१॥

हे भिक्षुक लोगो ! अपने कर्त्तव्य-पुण्य कार्य्य शीघ्र करो । अपने चलायमान मन को पाप कर्म से रोक रक्खो क्योंकि पुण्य कार्य्य मन्द मन्द करने से वह मन पापों ही में लग जाता है ॥ १ ॥

पापं चे पुरिसो कयिरा न तं कयिरा पुनप्पुनं ।
न तम्हि छन्दं कयिराथ दुक्खो पापस्स उच्चयो॥२

कदाचित् प्रमादवश पाप कर लिया तो वारंवार उस पाप को मत करो और न उसमें मन लगाओ क्योंकि पाप बटोरना दुःख का कारण है ॥ २ ॥

पुञ्ञं चे पुरिसो कयिरा कयिराथेनं पुनप्पुनं ।
तह्मि छन्दं कयिराथ सुखो पुञ्ञस्स उच्चयो॥३॥

जो नर यदि पुण्य कर्म करे तो उसको वारंवार करना चाहिए और उस में बराबर श्रद्धा रखनी चाहिए क्योंकि पुण्य का संचय करना सुख का कारण होता है ॥ ३ ॥

पापोपि पस्सति भद्रं याव पापं न पच्चति ।
यदाच पच्चती पापं पापो पापानि पस्सति ॥४॥

जब तक पाप अपनी पूर्णता को नहीं पहुँचता है तब तक तो पापात्मा पूर्व जन्मकृत शुभ संस्कारों के ज़ोर से सुख ही भोगता है । जब पाप अपने परिणाम को पहुँच जाता है तो पापी नाना प्रकार के पाप का फल भोगने लगता है ॥ ४ ॥

भद्रो पि पस्सति पापं याव भद्रं न पच्चति ।
यदा च पच्चती भद्रं भद्रो भद्रानि पस्सति ॥५॥

जब तक पुण्य अपने परिणाम को नहीं पहुँचता तब तक पुण्यात्मा पूर्व जन्म कृत अशुभ संस्कारों के ज़ोर से दुख भोगता है। जब पुण्य अपने परिणाम को पहुँचता है तब पुण्यात्मा शुभ फल (सुख) ही भोगने लगता है ॥ ५ ॥

मावमञ्ञेथ पापस्स न मन्दं आगमिस्सति ।
उदविन्दुनिपातेन उदकुम्भोपि पूरति ॥६॥

लव मात्र (थोड़ा भी) किया हुआ पाप क्या फल पहुँचावेगा ऐसा पाप का अपमान मत करो। जैसे जलविन्दु टपकते टपकते घट पूर्ण हो जाता है वैसे थोड़ा थोड़ा पाप संचित होकर पापात्मा बना देता है ॥ ६ ॥

बालो पूरति पापस्स थोकं थोकम्पि आचिणं ॥७॥

वैसे ही मूर्ख और पापी लोग जरा जरा पाप करके पाप को परिणाम तक पहुँचा देते हैं अर्थात् थोड़ा पाप भी बुरा है ॥ ७ ॥

मावमञ्ञेथ पुञ्ञस्स न मन्दं आगमिस्सति ।
उदविन्दुनिपातेन उदकुम्भोपि पूरति ।
धीरो पूरति पुञ्ञस्स थोकं थोकम्पि आचिणं ॥८॥

थोड़ा सा किया हुआ पुण्य क्या फल देगा ऐसे पुण्य का भी अपमान मत करो। जैसे जलविन्दु संचित होने से घड़ा पूर्ण हो जाता है वैसे ही विद्वान् पुरुष थोड़ा २ पुण्य करता हुआ पुण्य के परिणाम को पहुँचा देता है ॥ ८ ॥

वाणिज्जो व भयं मग्गं अप्पसत्थो महद्धनो ।
विसं जीवितुकामो व पापानि परिवज्जये ॥९॥

जैसे कम संगति वाला महाधनवान् महाजन चोरी डकैती युक्त मार्ग को त्याग दे और दीर्घ काल तक जीने की आशा रखने वाला हलाहल विषैली वस्तुओं को दूर से त्याग दे वैसेही सुखाभिलाषी भिक्षुक पाप-कर्म त्याग देवे ॥ ९ ॥

पाणिम्हि चे वणो नास्स हरेय्य पाणिनाविसं ।
नाब्बणं विसमन्वेति नत्थि पापं अकुब्बतो॥१०॥

यदि हाथ में व्रण (घाव) न हो तब हाथ से विष स्पर्श कर सकता है । जैसे व्रण रहित हाथ में विष असर नहीं करता है वैसे ही विना किया हुआ पाप नहीं होता ॥ १० ॥

यो अपदुट्ठस्स नरस्स दुस्साति ।
सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गनस्स ॥
तमेव बालं पच्चेति पापं ।
सुखुमो रजो पटिवातं व खित्तो ॥ ११ ॥

जो मूर्ख निर्दोष शुद्ध चरित्र तृष्णा-रहित निर्लोभी महात्मा को मन वचन कर्म द्वारा दोष लगाता है वह दोष जैसे वायु प्रतिकूल अर्थात् वायु की उलटी फेंकी हुई सुक्ष्म धूली के समान उस पापी के ऊपर पड़ता है ॥ ११ ॥

गब्भमेके उपज्जन्ति निरियं पापकम्मिनो ।
सग्गंसुगतिनोयन्ति परिनिब्बन्ति अनासवा॥१२

कोई २ मनुष्य मृत्यु लोक में जन्म लेते हैं पापात्मा लोग नर्क में उत्पन्न होते हैं। पुण्यात्मा स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं। आशातीत महात्मा गण निर्वाण में जाते हैं॥ १२॥

नअन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे ।
न पब्बतानं विवरं पविस्स ॥
न विज्जाति सो जगति पदेसो ।
यत्थ ठितो मुञ्चेय्य पापकम्मा ॥ १३॥

अन्तरिक्ष में (आकाश में) समुद्र में, पर्वत की गुफा में, प्रवेश कर लोक में ऐसा कोई स्थान नहीं है कि जिसमें रह कर किये हुए पाप से मुक्त हो अर्थात् अवश्य पाप का फल भोगना पड़ता है॥ १३॥

न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे ।
न पब्बतानं विवरं पविस्स ॥
न विज्जति सो जगति पदेसो ।
यत्थठितो न पसहेय्य मच्चु ॥१४ ॥

आकाश में, समुद्र गर्भ में, पर्वत गुफा में छिपा कर जगत् में ऐसा कोई स्थान नहीं है कि जिस में छिपने वाले को यमराज वश में न करें (यमराज से कोई किसी तरह बच नहीं सकता कहीं रहो मौत जरूर होगी) ॥ १४ ॥

पापवग्ग ९

सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो ।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये ॥ १ ॥

हे भिक्षुक लोगो ! सब प्राणियों को दण्ड से त्रास होता है और सब को मृत्यु का भय होता है । इससे सब जीवों को आत्मवत् मान कर हिंसाघात न करो । तात्पर्य्य-प्राणीमात्र को अपने आत्मा के तुल्य जान किसी को मत मारो ॥ १ ॥

सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बेसं जीवितंपियं ।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये ॥ २ ॥

हे भिक्षुक लोगो ! सब जीवों को दण्ड से त्रास होता है । सब जीवों को जीव प्यारा है इस से आत्मवत् मान कर प्राणियों की हिंसा न करो ॥ २ ॥

सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन विहिंसति ।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो न लभते सुखं ॥ ३ ॥

आत्म सुख चाहने वाला जो मूढ़ सुखार्थी प्राणियों को अनेक प्रकार से दण्ड देकर हिंसा करता है उस मूढ़ (पापी) को परलोक में सुख कभी नहीं मिलता ॥ ३ ॥

सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन न हिंसति ।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो लभते सुखं ॥ ४ ॥

आत्मसुख चाहने वाला जो विद्वान् सुखाभिलाषी अन्य जीवों की दण्ड से हिंसा नहीं करता वह परलोक में सुख पाता है ॥ ४ ॥

मावोच फरुसं किञ्चि वुत्ता पटिवदेय्युं तं ।
दुक्खाहिसारम्भकथा पटिदण्डाफुस्सेय्युंतं ॥ ५ ॥

किसी को परुष वचन (कड़वो बातें) मत कहना । कहने से तुमको भी ऐसा ही उत्तर मिलेगा । आक्षेप कथा दुखदायी ही होती है। अन्य के दण्ड देने से तुमको भी उसके बदले में दण्ड मिलेगा ॥५॥

सचे नेरेसि अत्तानं कंसो उपहतो यथा ।
एस पत्तोसि निब्बानं सारम्भो ते न विज्जति॥६॥

जैसे फूटे हुए कांसे का पात्र अर्थात् झाल शब्द नहीं करता ऐसे ही यदि आत्मा को निश्चल (क्षमा रूपी स्थिर) कर सकें तब तुम निर्वाण प्राप्त होगे । तुम्हें कोई विरोध नहीं मालूम होगा ॥ ६ ॥

यथा दण्डेन गोपालो गावो पाचेति गोचरं ।
एवं जराच मच्चु च आयुं पाचेन्ति पाणिनं ॥७॥

जैसे गोपाल (ग्वाला) गौओं को चराने के स्थान में दण्ड (लाठी) से खेद ले जाता है ऐसे ही जरा और मृत्यु प्राणियों के जीव को हरण कर ले जाता है ॥ ७ ॥

अथ पापानि कम्मानि करं बालो न बुज्झति ।
सेहि कम्मेहि दुम्मेधो अग्गिदड्डोव तप्पाति॥८॥

मूर्ख लोग हीन कर्म करने से भी (अपने को) हीन नहीं समझते है । वे उस पाप कर्म से अग्नि दग्ध के समान महा प्रज्वलित दुःख को भोगते हैं ॥ ८ ॥

यो दण्डेन अदण्डेसु अप्पदुट्ठेसु दुस्सति ।
दसन्नमञ्ञतरं ठानं खिप्पमेव निगच्छति ॥९॥

जो मूर्ख दण्ड के अयोग्य निरपराध महात्माओं को मन, वचन, कर्म तीनों में किसी एक दण्ड से आरोपित करता है उसको दस प्रकार के दण्डों में से कोई एक दण्ड शीघ्र ही प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

वेदनं फरुसं जानिं सरिरस्स च भेदनं।
गरुकं वापि आवाधं चित्तखेपं व पापुणे ॥१०॥
राजतोवा उपपसग्गं अब्भक्खानं व दारुणं।
परिक्खयंच ञातिनं भोगानं व पभंगुरं ॥११॥
अथवस्स आगारानि अग्गि डहति पावको।
कायस्स भेदा दुमेधो निरियं सो उपपज्जति ॥१२॥

उस मूर्ख को दुखदाई ज्वरादि रोग, सर्वनाश, शरीर के किसी अंग में छिन्न भिन्नता, पक्षाघातादि राज रोग, चित्त-विक्षेप (पागलपना) और राजा से कोई (क़ानूनी सज़ा), यश कीर्ति विनाश कारी कलंक (बदनामी) ज्ञाति व्यसन, भोग व्यसन, गृह में वारंवार अग्नि लगना ये दस दण्ड प्राप्त होते हैं और दुष्ट बुद्धिवाला वह मूढ़ मरने के बाद नरक में पड़ता है। तात्पर्य-महात्माओं में कलंक लगाने या पीड़ा पहुंचाने वाले दुष्ट पापी को दस प्रकार के दण्ड में से कोई अथवा सब दण्ड मिलने पर भी अन्त में नरक होता है ॥ १० । ११ । १२ ॥

न नग्गचरिया न जटा न पंका
नानासका थण्डिलसायिकावा।
रजोजल्लं ऊक्कूटिकप्पधानं
सोधेन्ति मच्चं अवितिण्ण कङ्खं ॥१३॥

नग्न व्रत, जटाधारण, पंक लगाना, अनशन व्रत (अन्न न खाना)। भूमि-शयन (ज़मीन पर सोना), भस्म लगाना, बैठे रहना; यह सम्पूर्ण व्रत भी मिथ्या कल्पना (भ्रमयुक्त) योगी के मन को नहीं शोधते हैं ॥१३॥

अलंकतो चेपि समं चरेय्य
सन्तो दन्तो नियतो ब्रह्मचारी ।
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं
सो ब्राह्मणो सो समणो स भिक्खू ॥१४॥

जो मनुष्य गृहस्थाश्रमों के वस्त्र भूषणादि से अलंकृत होने पर भी राग द्वेषादि से रहित इन्द्रिय दमन नियमित ब्रह्मचारी हो और सब जीवों से हिंसाघातादि दण्ड-निवृत्ति कर तीनों द्वार शमन करे वही ब्राह्मण वही श्रमण और वही भिक्षुक कहलाता है ॥ १४ ॥

हिरी निसेधो पुरिसो
कोचि लोकस्मिं विज्जति ।
यो निन्दं अप्पबोधति
अस्सो भद्रो कसामिव ॥१५॥

लोक में उठे हुए विषयानुरागी मन को लज्जा से रोकने वाले बहुत सज्जन कम हैं जैसे कि सुशिक्षित अश्व (घोड़ा) बेत का स्पर्श नहीं करता वैसे ही सज्जन लोग दूसरों की निन्दा से पहिले ही सावधान हो जाते हैं। अर्थात् सज्जन लोग लोक निन्दा से पहिले ही सावधान रहते हैं ॥ १५ ॥

अस्सो यथा भद्रो कसानिविट्ठो
आतापिनो संवेगिनो भवाथ ।
सद्धाय सीलेन च विरियेन च
समाधिना धम्मविनिच्छयेन च ।
सम्पन्नविज्जाचरणा पतिस्सता
पहस्सथ दुक्खमिदं अनप्पकं ॥१६॥

वेत से मारे हुए अच्छे घोड़े के समान तुम लोग भी तपेश्वरी संसार भीरुक होवो। एवं श्रद्धा, शील उद्योग समाधि धर्माधर्म निश्चय ज्ञान त्रिविद्या और १५ चरण स्मृति से युक्त होकर अगणित इस संसार दुख को दूर करे। अर्थात् कदाचित् किसी कारण से वेत की मार खाये हुए अच्छे घोड़े पुनः प्रहार के भय से अत्यन्त चौकन्ने रहते हैं वैसे ही महात्माओं को उचित है कि लोकापवाद-भय से सावधान हो कर धर्म उद्योग में लगे रहें॥ १६ ॥

उदकं हि नयन्ति नेत्तिका
उसुकारा नमयन्ति तेजनं ।
दारुं नमयन्ति तच्छका
अत्तानं दमयन्ति सुब्बता ॥ १७ ॥

नियमित व्रतधारी शेष पण्डित वर्ग ५ में देखिये ॥ १७ ॥

दण्डवग्ग १०

कोनु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति।
अन्धकारेण ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ ॥ १ ॥

हे मूढ़ो ! इस लोक में राग द्वेष मोहरूपा अग्नि से नित्य प्रज्व-लित होने पर भो तुम लोगों को हर्ष और आनन्द कैसा और मोह रूपी अन्धकार से आच्छादित होने पर भी ज्ञानरुपी प्रदीप को क्यों नहीं खोजते हो ॥

पस्सचित्तकतं बिम्बं अरुकायं समुस्सितं ।
आतुरं बहुसङ्कप्पं यस्स नत्थि धुवं ठीति ॥२॥

जिस की नित्य स्थिति नहीं है ऐसे वस्त्रा भूषण करके विचित्र किया हुआ नव द्वार युक्त अस्थि पँजर से खड़ी हुई, नाना प्रकार के रोगों से आतुर, अनेकों संकल्पों से भरी हुई इस देह को देखो ॥ २ ॥

परिजिण्णमिदं रूपं रोगनिड्ढं पभङ्गुरं ।
भिज्जति पुतिसं देहो मरणान्तंहि जीवितं ॥३॥

यह देह बुढ़ापा रोगों के निदान और एकान्त-विध्वँसी है जिस से जीवन का अन्त मृत्यु है। इस से यह देह शीघ्र ही गल जायगा अर्थात् नाश हो जायगा ॥ ३ ॥

यानिमानि अपत्थानि अलाबुनेव सारदे ।
कापोतकानि अट्ठिनी तानि दिस्वान कारति ॥४

शरद् ऋतु के तीक्ष्ण घाम में निरपेक्ष पड़े हुए लौकी के समान अति सफ़ेद यह अस्थि-पँजर को देखो। इसे देखकर विज्ञ पुरुषों की प्रीति कैसो उत्पन्न होगी ॥ ४ ॥

अट्ठीनं नगरं कतं मंसलोहितलेपनम् ।
यत्थ जराच मच्चुच मानो मक्खो च ओहितो ॥५

यह देह कैसी है कि आशारूपी बढ़ई ने मांस और रक्त से लेपन कर अस्थिपंजरों का एक महान् नगर रच रक्खा है जिस नगर (देह) में जरा (बुढ़ापा) मृत्यु तथा अहंकार ईष्या सदा विहार करते हैं ॥ ५ ॥

जीरान्ति वे राजरथा सुचित्ता
अथो सरीरम्पि जरं उपेति ।
सतं च धम्मो न जरं उपेति
सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ति ॥६॥

राजाओं के सुन्दर और विचित्र रथ भी निश्चय करके जीर्ण हो जाते हैं। एवं प्राणियों का शरीर भी जीर्णता को प्राप्त होता है किन्तु सज्जनों का निर्मल यश जीर्णता को नहीं प्राप्त होता। यह बात बुद्धादि आर्य्य लोगों ने प्रकाशित की है ॥ ६ ॥

अप्पस्सुतायं पुरिसो
बलिबद्दोव जीरति ।
मंसानि तस्स वड्ढन्ति
पञ्ञा तस्स न वड्ढति ॥ ७ ॥

यह अल्पश्रुत (शास्त्रविहीन) लालुदायी नाम भिक्षुक बैल के समान जीर्ण हो रहा है। उसके मांस ही बढ़ता है किन्तु ज्ञान नहीं बढ़ता ॥ ७ ॥

अनेकजाति संसारं
संधाविस्सं अनिव्विस्सं ।
गहकारकं गवेसन्तो
दुक्खा जाति पुनप्पुनं ॥८॥

हे तृष्णे ! तुझको खोजते खोजते अनेक बार संसार में भ्रमण किया और बारंम्वार जन्म लेना बड़े दुःख की बात है ॥ ८ ॥

गहकारक दिट्ठोसि
पुन गेहं न काहासि ।
सव्वा ते फासुका भग्गा
गहकूटं विसंखतं ।
विसङ्खारगतं चित्तं
तण्हानं खयमज्जगा ॥ ९ ॥

हे गृहकारक अर्थात् हे तृष्णे ! अब तुमको देख लिया है फिर शरीररूपी गृह नहीं बनाने पावोगी । तेरी सम्पूर्ण गृह-सामग्री को मैंने तोड़ दिया और घर के कुटम्ब रूपी अविद्या को भी विध्वंस किया तथा संस्कार-रहित निर्वाण में लगा हुआ मेरा मन सम्पूर्ण तृष्णा के क्षयत्व को पहुँच गया ॥ ९ ॥

अचरित्वा ब्रह्मचरियं
अलद्धा योब्बने धनं ।

जिराणकोञ्चा व झायन्ति
खीणमच्छे व पल्लले ॥१०॥

युवा अवस्था में ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण न कर और यथेष्ट धन उपार्जन न कर यह सेठ का लड़का जल मछली दोनों से रहित पंक में धंसे हुए पंखहीन वृद्ध क्रौंच पंक्षी के समान सोच रहा है ॥ १० ॥

अचरित्वा ब्रह्मचरियं
अलद्धा योब्बने धनं ।
सेन्ति चापातिखीणा व ।
पुराणानि अनुथुनं ॥११॥

युवा अवस्था में ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण न कर और धनप्राप्ति न कर यह भाग्यहीन सेठ का लड़का धनुष से छूट कर पृथ्वी में पड़ा हुआ बाण के समान पहिले भोगे हुए अन्न वस्त्रालंकारादि की स्तुति करता हुआ सोच रहा है ॥ ११ ॥

जरावग्ग (११)

———

अत्तानं चे पियं जञ्ञा
रक्खेय्य नं सुरक्खितं ।
तिन्नमञ्ञतरं यामं
पटिजग्गेय्य पण्डितो ॥१॥

यदि अपने को प्रिय हो तो यत्न से उसका रक्षा करो । विद्वान् पुरुष को तीन अवस्था में से एक अवस्था में भी धर्मकार्य्य करना चाहिए । (इस श्लोक में याम शब्द का रात के प्रहर नहीं, अवस्था ही अर्थ किया है । इसलिए मनुष्य के पहिली तीनों अवस्थाओं में आत्महित योग दानादि करना उचित है । नहीं तो उनमें से किसी एक अवस्था में अवश्य करना चाहिए उनमें भी न हुआ तो वृद्धावस्था में हाथ धो बैठ ॥ १ ॥

अत्तानमेव पठमं
पतिरूपे निवेसये ।
अथञ्ञ मनुसासेय्य ।
न किलिस्सेय्य पण्डितो ॥ २ ॥

विद्वान् पुरुष पहिले आत्मा को ही उचित मार्ग में राखें । पश्चात् अन्य लोगों को उपदेश करे जिससे आप कलंक-मुक्त होवे ॥ २ ॥

अत्तानञ्चे तथा कयिरा यथञ्ञमनुसासति ।
सुदन्तो वत दम्मेथ अत्ता हि किर दुद्दमो ॥३॥

जैसे दूसरों पर अनुशासन करता है वैसा ही आप भी करे तथा निश्चय करके आत्मजित होकर ही दूसरों पर अनुशासन करे क्योंकि आत्मा ही दुर्दमनीय है ॥ ३ ॥

अत्ताहि अत्तनो नाथो कोहि नाथो परोसिया।
अत्तनाव सुदन्तेन नाथं लभाति दुल्लभं ॥४॥

आप ही अपने का नाथ है। आत्मा से अन्य नाथ कौन हो सकता है। आत्मजित होने से ही दुर्लभ नाथ मिलता है अर्थात् पापों से निवृत्ति हो जाना वही नाथ है ॥ ४ ॥

अत्तनाव कतं पापं
अत्तजं अत्तसम्भवं।
अभिमन्थंति दुम्मेधं
वजीरं व स्ममयं मणिं ॥ ५

जैसे पत्थर से उत्पन्न हुआ हीरा अपने कारणभूत उस पत्थर को छिन्न भिन्न कर देता है वैसे ही आप से किया हुआ पाप दुष्ट बुद्धि वाले को नरक में गिरा के मथन कर देता है ॥ ५ ॥

यस्स अच्चन्तदुस्सील्यं
मालुवा सालमिवोततं।
करोति सो तथात्तानं
यथा नं इच्छती दिसो ॥ ६

जैसे मालु नाम लता शालवृक्ष (साखू) को चारों तरफ़ से छाकर (घेर कर) गिरा देती है वैसेही जिसकी अत्यन्त दुःशीलता

है वह उस पापकर्ता को ऐसा विनाश करती है जैसे उनको शत्रुगण चाहते हैं ॥ ६ ॥

अर्थात् जैसे शत्रुगण अपने वादी को यथेष्ट विनाश करते हैं वैसे ही पापकर्ता अपने पापों से नाश हो जाता है ॥

सुकराणि असाधुनि
अत्तनो अहितानि च ।
यंवे हितं च साधुं च
तं वे परमदुक्करं ॥ ७ ॥

अपने अहित करने वाले जितने पाप कर्म हैं उनका करना अति सरल होता है । अपने कल्याणकारी दोष रहित जो शुभ कर्म हैं निश्चय करके उनका करना अति कठिन है ॥ ७ ॥

अर्थात् दुखदाई पाप कर्म सहज में, सुखदाई शुभ कर्म कठिनता से होते हैं

यो सासनं अरहतं अरियानं धम्मजीविनं ।
पटिक्कोसति दुम्मेधो दिट्ठिं निसाय पापिकं
फलानि कट्ठकस्सेव अत्तहञ्ञाय फलति ॥ ८ ॥

जो दुष्ट बुद्धि वाले दोषयुक्त मिथ्या ज्ञान का आश्रय लेकर (पाखण्डता से प्राप्त हुए अपने लाभ सत्कारादि के हानि को देख कर) धर्म-जीवी बुद्धादि आर्य्य गणों के उपदेश की निन्दा अपमानादि करता है वह अपमान बाँस के फल के समान उसी के सत्यानाश करने के लिये ही फलता है । बांस, केला, नलों के फल केवल उन्हीं का सत्यानाश करते हैं ॥ ८ ॥

अत्तना च कतं पापं अत्तना संकिलिस्सति।
अत्तना अकतं पापं अत्तना व विसुज्झति॥

अपने किये हुए पापों से आप ही दुख पाते हैं। पाप न करने से आप ही पवित्र होते हैं॥

सुद्धी असुद्धी पच्चत्तं नाञ्ञो अञ्ञं विसोधये।९

शुद्धि अशुद्धि दोनों के प्रति कर्त्तात्मा ही है (आत्मा ही शुद्ध या अशुद्ध कर्म करता है)। दूसरा दूसरे को शोध नहीं सकता है॥ ९॥

अत्तदत्थं परत्थेन बहुना पि न हापये।
अत्तदत्थमभिञ्ञाय सदत्थपसुतो सिया॥१०॥

बहुत से परहित साधन करके अल्पमात्र भी आत्महित को हानि में न पहुंचावें। आत्महित की महिमा जान कर स्वार्थसाधन (मुक्तिसाधन) में तत्पर होना चाहिये॥

अत्तवग्ग १२

हीनं धम्मं न सेवेय्य पमादेन न संवसे ।
मिच्छादिट्ठिं न सेवेय्य नसिया लोकवड्ढनो ॥१॥

विषयासक्ति नीच धर्म की सेवा न करना, कर्त्तव्य कार्य में आलस न होना मिथ्या दृष्टि (नास्तिक मत) को ग्रहण न करना, संसारयात्रा को बढ़ाना नहीं ॥ १ ॥

उतिट्ठे न पमज्जेय्य धम्मं सुचरितं चरे ।
धम्म चारी सुखं सेति अस्मिं लोके परह्मिच ॥२॥

हे भिक्षुगण ! अपने कर्त्तव्य कार्य्य में आलस न करना, पवित्र मन से धर्म आचरण किया करो, धर्मात्मा ही इस लोक तथा परलोक में सुख पाता है ॥ २ ॥

धम्मं चरे सुचरितं न नं दुच्चरितं चरे ।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके पह्मिच ॥३॥

शुद्ध चरित्र से धर्म आचरण करो, दुष्ट चरित्र से धर्म आचरण कदापि न करो, क्योंकि धर्मात्मा ही इस लोक और पर-लोक में सुख से विहार करते हैं ॥ ३ ॥

यथा बुब्बुलकं पस्से यथा पस्से मरीचिकं ।
एवं लोकं अवेक्खन्तं मच्चुराजा न पस्सति ॥४॥

जल के बुल्ले को जिस प्रकार देखें, जिस प्रकार मृगतृष्णा को देखे इसी प्रकार जगत् की मिथ्या कल्पना को देखनेवाले योगियों को यमराज नहीं देखते हैं ॥ ४ ॥

एथ पस्सथिमं लोकं चित्तं राजरथूपमं।
यत्थ बाला विसीदन्ति नत्थिसङ्गो विजानतं॥५॥

आओ! विचित्र राजरथ के समान इस लोक के आकार को देखें, जिस लोक में मूर्ख लोग डूब रहे हैं परन्तु पण्डितों को इस की आशा नहीं है॥ ५॥

यो च पुब्बे पमज्जित्वा पच्छा सो न पमज्जति।
सोमं लोकं पभासेति अब्भामुत्तोव चन्दिमा॥६॥

जो नर पहिले भूल कर पीछे को भी सँभार लेता है वह मेघ घटा से मुक्त चन्द्रमा के समान इस लोक में अपना निर्मल यश द्वारा प्रकाशित कर देता है॥ ६॥

यस्स पापं कतं कम्मं कुसलेन पिधीयति।
सोमं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तोव चन्दिमा॥७॥

जो कोई भूल से किये हुए पाप कर्म को योग्य दान इत्यादि पुण्य कर्मों से ढक लेता है वह विद्वान् मेघ घटा से मुक्त चन्द्रमा के समान इस लोक को अपनी सुकीर्ति द्वारा उज्वल कर देता है॥ ७॥

अन्धिभूतो अयं लोको तनुकेत्थ विपस्सति।
सकुन्तो जालमुत्तोव अप्पो सग्गाय गच्छति॥८॥

यह लोक बिलकुल एक दम से अंधकारमय है इस में विरले ही कोई ज्ञानी होते हैं। जाल से मुक्त (तिड्डो) के समान थोड़े ही मनुष्य स्वर्गलोक को जाते हैं॥ तात्पर्य्य यह है कि जाल में

फँसी हुई तिड्डी (पाँखियों) में से विरलीहो उद्योगी तिड्डी निकल भागती है वैसे ही इस अंधकारमय संसार से विरलेही योगी मुक्त होते हैं ॥ ८ ॥

हंसादिच्चपथे यन्ति आकासे यन्ति इद्धिया ।
नीयन्ति धीरा लोकम्हा छेत्वा मारं सवाहिणिं॥६

(जिस तरह) हंसगण आकाश में उड़ते हैं (उसी तरह) योगेश्वर ऋद्धि से आकाश में गमन करते हैं । तृष्णा क्षीण अरहन्त लोग सेना सहित कामदेव को विनाश कर तीनों लोक से मुक्त हो जाते हैं ॥ ९ ॥

एकं धम्मं अतीतस्स मूसावादिस्स जन्तुनो ।
वितिण्णा परलोकस्स नत्थि पापं अकारियं॥१०

जिसने सत्य धर्म को त्याग दिया है अर्थात् मिथ्या वादी है परलोक को गंवाये हुए उस मूर्ख को कोई अकर्त्तव्य नहीं है अर्थात् वह हर प्रकार के पापों को करते ही हैं ॥ १० ॥

न वे कदरिया देवलोकं वजन्ति ।
बाला हवे न पसंसन्ति दानं ।
धीरो च दानं अनुमोदमानो ।
तेनेव सो होति सुखी परत्थ ॥ ११ ॥

निश्चय करके कृपण लोग स्वर्ग लोक को नहीं जाते हैं, मूर्ख लोग निश्चय करके दान की प्रशंसा नहीं करते हैं । विद्वान् पुरुष दान का अनुमोदन करते करते उस पुण्य से ही वह परलोक में सुखी होते हैं ॥ ११ ॥

पथव्या एकरज्जेन सग्गस्स गमनेनवा ।
सब्बलोकाधिपच्चेन सोतापात्ति फलं वरं ॥१२॥

पृथ्वी का एक छत्र राज और स्वर्ग गमन तथा सम्पूर्ण लोकाधिकारी से श्रोतापत्ति नाम मार्ग श्रेष्ठ है--अर्थात् बौध धर्म में निर्वाण गामी चार मार्ग हैं। जैसे जो योगेश्वर इस देह से स्थल तृष्णा को विध्वंस कर शेष सूक्ष्म तृष्णा को भी सातवें जन्म तक शोध के मुक्त हो जाता है उसका नाम श्रोतापत्ति मार्ग एवं सूक्ष्म तृष्णा को शोधते शोधते पुनः एक वारगी मृत्यु लोक में जन्म लेकर मुक्त होजाता है उसका नाम सकृदा गामी मार्ग तथा सूक्ष्म तृष्णा को भी शोधते शोधते मृत्युलोक से ब्रह्म लोक में पहुंच कर वहां से ही मुक्त हो जाता है पुनः मृत्युलोक में न आने से उसका नाम अनागामी मार्ग और जो इस देह से ही सम्पूर्ण तृष्णा विध्वंस कर मुक्त है उसको अरहत्त मार्ग कहते हैं। अर्थात् योगी के मन्द, तीक्ष्ण, अतितीक्ष्ण और तीक्ष्णतर ज्ञानके अवस्था भेद से ही मुक्ति मार्ग के चार प्रकार हुए हैं॥

लोकवग्ग १३

यस्स जितं नावजीयाति ।
जितमस्स नो याति कोचि लोके ।
तं बुद्धमनन्तगोचरं ।
अपदं केन पदेन नेस्सथ ॥ १ ॥

जिसने अपने सर्वज्ञान के बल से कामदेव को जीत लिया है उसके विजय को पुनः कोई पराजय नहीं कर सका है। लोक में इस बुद्ध भगवान् के विजय के पीछे कोई राग द्वेष मोहादि पाप धर्म नहीं चलता है मोह तृष्णा-रहित अनन्त ज्ञानी उस बुद्ध भगवान् को किस उपाय से वश करलें ॥ १ ॥

यस्स जालिनी विसत्तिका ।
तण्हा नात्थि कुहिञ्चि नेतवे ।
तं बुद्धमनन्तगोचरं
अपदं केन पदेन नेस्सथ ॥ २॥

किसी योनि में ले जाने के लिये जिसके महा जालरूपी विषयों में आसक्त तृष्णा नहीं है उस अनन्त ज्ञानी आशातीत बुद्ध भगवान् को किस उपाय से वश कर लेवें ॥ २ ॥

ये झानपसूता धीरा नेक्खम्मूपसमे रता ।
देवापि तेसं पिहयन्ति सम्बुद्धानं सतीमतं ॥३॥

ये विद्वान् लोग ध्यायी और बराबर निर्वाण (मुक्त) में मग्न रहते हैं उन स्मृतिमान् बुद्धों को देवता भी प्यार करते हैं अर्थात् स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

किच्छो मनुस्सपटिलाभो किच्छं मच्चानजीवितं।
किच्छं सद्धम्मसवणं किच्छो बुद्धानं उप्पादो॥४॥

मनुष्य जन्म मिलना बड़ा दुर्लभ है तथा मनुष्यों का जीवन भी निर्विघ्न व्यतीत होना बड़ा दुर्लभ है और मिथ्या कल्पनाओं से रहित सत्य धर्म का श्रवण होना बड़ा दुर्लभ है लोक में बुद्धों का उत्पन्न होना अति दुर्लभ है ॥ ४ ॥

सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उप्पसम्पदा।
सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धानसासनं ॥ ५ ॥

किसी तरह का पाप न करना, पुण्य कर्म उपादन करना, अपने मन को पवित्र रखना यही बुद्धों के शासन (उपदेश) हैं ॥ ५ ॥

खन्ती परमं तपो तितिक्खा
निब्बानं परमं वदन्ति बुद्धा।
न हि पब्बजितो परूपघाती
न समणो होति परं विहेठयन्तो ॥ ६ ॥

यह तितिक्षा नाम क्षान्ति (क्षमा करना) बुद्ध धर्म में परम तप है बुद्ध लोग निर्वाण को सर्वोत्कृष्ट कहते हैं दूसरों को हिंसा-घात करने वाला न तो परिव्राजक और न श्रमण (भिक्षुक) है ॥६॥

अनुपवादो अनुपघातो पातिमोक्खे च संवरो ।
मत्तञ्ञुता च भत्तस्मिं पन्तञ्च सयनासनं
अधिचित्ते च आयोगो एतं बुद्धानसासनं ॥७॥

दूसरों की निन्दा न करना तथा हिंसाघात भी मत करना और अपनी शिक्षा में दृढ़ संकल्प होना, भोजनाहार में प्रमाण जानना (मित भोजी होना), सोने और रहने को निर्जन स्थान प्रिय समझना, समाधि अवस्था में मन लगाना, यह भी बुद्धों के अनुशासन हैं ॥ ७ ॥

न कहापणवस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति ।
अप्पस्सादा दुखा कामा इति विञ्ञाय पण्डितो ८

मणि मुक्तादि रत्न-वृष्टि से भी विषय-वासना में तृप्ति (पूर्णता) नहीं होती है। यह काम भोग अल्प स्वाद दुःखमय है। ज्ञानी पुरुषों को ऐसा ही जान कर ॥ ८ ॥

अपि दिब्बेसु कामेसु रतिं सो नाधिगच्छति ।
तण्हक्खयरतो होति सम्मासम्बुद्धसावको ॥६॥

बुद्धानुयायी वह भिक्षुगण स्वर्ग सुख में भी मन नहीं लगाते हैं किन्तु तृष्णारहित निर्वाण में ही रत होते हैं ॥ ९ ॥

बहुं वे सरणं यन्ति पब्बतानि वनानिच ।
आरामरुक्खचेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता ॥१०

भयभीत होकर लोग अनिष्ट शान्ति के लिये बहुतेरे पर्वत वन बाग़ बाग़ीचा, वृक्ष चैत्यों की शरण लेते हैं ॥ १० ॥

नेतं खो सरणं खेमं नेतं सरणमुत्तमं ।
नेतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥११॥

यह शरण उत्तम नहीं, यह शरण सर्वोत्कृष्ट नहीं । इन सब के शरणागत हो कर सब दुःखों से नहीं छूटते हैं ॥ ११ ॥

यो च बुद्धं च धम्मं च संघं च सरणं गतो ।
चत्तारि अरियसच्चानि सम्मपपञ्ञाय पस्सति १२

जो विद्वान् बुद्ध और उसके निष्कलंक उपदेश धर्म तथा उसके धर्मानुयायी विषय वासना रहित भिक्षुक गणों का शरणागत होता है ॥ १२ ॥

दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्कमं ।
अरियं अट्ठङ्गिकं मग्गं दुक्खूपसमगामीनं १३

और दुःख, तृष्णा, निर्वाण, तथा उसका गमनोपाय अष्टाङ्ग मार्ग, इन चार अर्य्य सत्य को यथार्थ ज्ञान से देखता है ॥ १३ ॥

एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं ।
एतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥१४॥

उस विद्वान् के लिये यह शरण और यह सत्यज्ञान ही श्रेष्ठ तथा कल्याणकारी है । इस ज्ञान और शरण की प्राप्ति होकर ही संसार के सम्पूर्ण दुखों से छुटकारा होता है । १४ । अर्थात् १ सम्यक् दृष्टि २ सम्यक संकल्प ३ सम्यक् वाचा ४ सम्यक् कर्मान्त (परि-शुद्ध कर्म) ५ सम्यक् आजीव (धर्मपूर्वक जीविका) ६ सम्यक् व्यायाम (धार्मिक उद्योग) ७ सम्यक् सति (धार्मिक स्मृति) ८ सम्यक समाधि यही अष्टाङ्ग आर्य्य मार्ग हैं। दुख सत्य, समुदय,

(तृष्णा) सत्य, निरोध (निर्वाण) सत्य, मार्ग (मुक्तिपथ) सत्य, इन चार को ही आर्य्य सत्य कहते हैं ॥ १४ ॥

दुल्लभो पुरिसा जञ्ञो न सो सब्बत्थ जायति ।
यत्थ सो जायति धीरो तं कुलं सुखमेधति ॥१५॥

पुरुषोत्तम (बुद्ध) होना दुर्लभ है। वह सर्व देशों में सर्व कुलों में नहीं होते हैं। वह महा पुरुष (बुद्ध) आर्य्य भूमि एवं ब्राह्मण क्षत्रिय कुल में ही उत्पन्न होते हैं। और जिस कुल में उत्पन्न होते हैं उस कुल (वंश) के सुख को बढ़ाते हैं ॥ १५ ॥

सुखो बुद्धानं उपपादो सुखा सद्धम्मदेसना ।
सुखा संघस्ससामग्गी समग्गानं तपो सुखो ॥१६

लोक में बुद्धों का उत्पन्न होना परम सुख है बुद्ध होकर धर्मोपदेश करना सब लोगों को सुखदाई है। पवित्र आचार वाले भिक्षुगणों का एकत्त्व होना परम सुख है और एकत्र होकर तपस्याचरण करना अति सुखदायक है ॥ १६ ॥

पुजा रहे पुजयतो बुद्धे वा यदि सावके ।
पपंच समतिक्कन्ते तिण्णसोकपरिद्दवे ॥१७॥

ते तादिसे पुजयतो निब्बुते अकुतोभये ।
न सक्का पुञ्ञसंखातुं इमेत्तमपि केनचि ॥१८॥

जिसकी प्रपंच वासना निवृत्ति हो गई और शोक विलाप से उत्तीर्ण है तथा जगत् बन्धन से मुक्त एवं जन्म मरणादि दुखों से निर्भय हो ऐसे परम पूज्य बुद्ध भगवान् अथवा उनके शिष्य वर्गों की पूजा सत्कार करने वाले का पुण्य किसी प्रकार से भी गणना में नहीं आ सकता है अर्थात् अनन्त है॥ १७—१८॥

बुद्धवग्ग १४

सुसुखं वत जीवाम वेरिनेसु अवेरिनो ।
वेरिनेसु मनुस्सेसु विहराम अवेरिनो ॥१॥

हे सज्जनो ! बैरियें पर कृपा दृष्टि रख के परमहर्ष के साथ हम तुम जीवन यापन करें, शत्रुओं पर दया रख कर ही हम लोग बिहार करें ॥ १ ॥

सुसुखं वत जीवाम आतुरेसु अनातुरा ।
आतुरेसु मनुस्सेसु विहराम अनातुरा ॥ २॥

तृष्णातुर (महालोभी) मूढ़ जनें में भी हम को तृष्णारहित (निर्लोभी) अनातुर हो कर अपना जीवन व्यतीत करें । तृष्णातुर मनुष्यों के मध्य में भी हम लोग अनातुर हो कर विहार करें ॥ २ ॥ (तात्पर्य्य यह है कि महा लोलुप और विषयातुर लोगों में भी निर्लोभी वासना-रहित आनन्द से रहें)

सुसुखं वत जीवाम उस्सुक्केसु अनुस्सुका ।
उस्सुक्केसु मनुस्सेतु विहराम अनुस्सुक्का ॥३॥

विषय-वासना में उत्सुक जनों के मध्य हम को अनुत्सुक हो कर ही अपना जीवन व्यतीत करें। विषयोत्सुक मनुष्यों के मध्य में अनुत्सुक (वैरागी) हो कर ही हम लोग विहार करें ॥ ३ ॥

सुसुखं वत जीवाम येसं नो नत्थि किञ्चनं ।
पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभस्सरा यथा ॥४

हमको किञ्चित् मात्र भी राग द्वेषादि नहीं है इससे हे भिक्षुगणों ! हम तुम अति सुख से जीवन व्यतीत करें। आभासर नाम महा ब्रह्मा के समान समाधि सुख अमृत पान करके विहार करें॥ ४॥

जयं वेरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो।
उपसन्तो सुखं सेति हित्त्वा जयपराजयं॥५॥

जो जीतते हैं उनका बैर बढ़ता है, जो हारा है उनको भी दुःख होता है जो राग द्वेषादि से शान्त होगया है वह महात्मा जय और पराजय दोनों को छोड़ कर सदा सुख से विहार करता है॥ ५॥

नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो कलि।
नत्थि खन्धादिसा दुक्खा नत्थि सन्ति परंसुखं॥६

राग के समान अग्नि नहीं, क्रोध के समान पाप नहीं, स्कन्ध (शरीर) के समान दुखदाता कोई नहीं, निर्वाण (मुक्ति) के समान सुख नहीं है॥ ६॥

अर्थात् राग अग्नि के समान दाहक, क्रोध से पाप शरीर दुखों की खानि है, और मुक्ति सुख की दाता है।

जिघच्छा परमा रोगा संखारा परमा दुखा।
एतं ञत्वा यथाभुतं निब्बानं परमं सुखं॥७॥

क्षुधा जो है सो परम रोग है एवं संस्कार परम दुख है इसी प्रकार यथार्थ जान कर निर्वाण (मुक्ति) ही परम सुखदायक है॥ ७॥

आरोग्या परमा लाभा सन्तुट्ठी परमं धनं ।
विस्सासा परमा ञाति निब्बानं परमं सुखं ॥८॥

शरीर का आरोग्य होना परम लाभ है, संतोष परम धन है, विश्वास परम ज्ञाति है और निर्वाण ही परम सुख है ॥ ८ ॥

पविवेकरसं पीत्वा रसं उपसमस्स च ।
निद्दरो होति निप्पापो धम्म पीति रसं पिवं ॥९॥

उत्तम विवेक रस अर्थात् समाधिस्थ और शान्तिमय निर्वाण के रस को पीकर धर्मनिष्ठ प्रीति रस के पान करने वाला निर्भय और निष्पाप हो जाता है ॥९॥

साधुदस्सनमरियानं सन्निवासो सदा सुखो ।
अदस्सनेन बालानं निच्चमेव सुखी सिया॥१०॥

बुद्धादि आर्यों का दर्शन कल्याणकारी होता है, उनके साथ रहने से सदा सुख पाता है परन्तु दुष्टों को कभी आँख से न देखना अर्थात् दुष्टों से सदा अलग रहने से सदा सुख होता है ॥१०॥

बालसङ्गतचारी हि दीघमद्धान सोचति ।
दुक्खो बालेहि संवासो अमित्तेनेव सब्बदा ॥
धीरो च सुख संवासो ञातीनंव समागमो ॥११॥

दुष्टों के साथ विचरने वाले को बहुत काल तक पछताना पड़ता है। शत्रु के साथ सहवास के समान एक दुष्ट के साथ रहना सदा दुखदाई होता है ॥

और इष्ट मित्रों के साथ रहने के समान पंडितों के साथ रहने से सुख होता है ॥११॥

तस्माहि धीरं च पञ्ञञ्च बहुस्सुतञ्च धोरह्यं
सीलधूतवतवन्तमरियं
तं तादिसं सप्पुरिसं सुमेधं
भजेथ नक्खत्तपथं व चन्दिमा ॥१२॥

इससे जैसे चन्द्रमा निर्मल आकाश मार्ग का सेवन करता है वैसेही स्थिर बुद्धि वाले प्रज्ञावन्त बहुश्रुतिधर (अनेक शास्त्रों के जानने वाले) क्षमा शील दृढ़ व्रत धारी, निष्पाप आर्य्य ऐसे सज्जन तथा बुद्धिमान का भजन किया करो ॥ १२ ॥

सुखवग्ग १५

अयोगे युञ्ज मत्तानं योगस्मिञ्च अयोजयं ।
अत्थं हित्वा पियग्गाही पिहेतत्तानुयोगिनं ॥१॥

जो अयोग्य पाप कर्म में मन लगाते और योग्य पुण्य कर्म में मन को नहीं लगाते हैं अपना हितार्थ छोड़कर विषयानुरागी हो जाते हैं वे मूढ़ आत्महित साधक सज्जनों को देखकर पछताते हैं ॥१॥

मा पियेहि समागच्छि अपियेहि कुदाचनं ।
पियानं अदस्सनं दुक्खं अपियानंच दस्सनं॥२॥

प्रेमी और अप्रेमी दोनों के साथ न रहना क्योंकि प्रेमियों के वियोग से दुःख और अप्रेमियों (दुष्टों) के मिलाप से भी दुःख होता है ॥२॥

तस्मा पियं न कयिराथ पिया पायो हि पापको ।
गन्था तेसं न विज्जन्ति येसं नत्थि पियापियं ॥३॥

इस लिये किसी वस्तु में स्नेह न करो, क्योंकि प्रिय वस्तु के वियोग तथा अप्रिय वस्तु की प्राप्ति से भी हानि और शोक होता है । जिनको प्रिय अप्रिय दोनों का भाव ही नहीं उनसे ग्रन्थि-रूप काम क्रोध छुट जाता है ॥

पियतो जायते सोको पियतो जायते भयं ।
पियतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं॥४॥
प्रेमतो जायते सोको प्रेमतो जायते भयं ।
प्रेमतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं॥५॥

प्रेम बन्धन से शोक तथा भय पैदा होता है, प्रेम बन्धन से छुटे हुए महात्मा को शोक एवं भय कहाँ से हो सकता है ॥ ४ ॥ ५ ॥
(दोनों श्लोकों में केवल प्रिय, प्रेम शब्द का ही अन्तर है)

रतिया जायते सोको रतिया जायते भयं ।
रतिया विप्पमुत्तस्स नत्थिसोको कुतोभयं ॥६॥
कामतो जायते सोको कामतो जायते भयं ।
कामतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोकोकुतोभयं ॥७॥
तण्हाय जायते सोको तण्हाय जायते भयं ।
तण्हायविप्पमुत्तस्सनत्थिसोकोकुतोभयं ॥८॥

रूपादि पंच विषयों में रति-कामना, तृष्णा होने से शोक और भय उत्पन्न होते हैं जिसका मन रति-कामना, तृष्णा से मुक्त हुआ है उसको शोक ही नहीं, तो भय कहां से होगा अर्थात् शोक और भय दोनों नहीं होते हैं। ६। ७। ८

सीलदस्सनसम्पन्नं धम्मत्थं सच्चवादिनं ।
अत्तनो कम्मकुब्बानं तं जनो कुरुते पियं ॥९॥

शिक्षा और शीलयुक्त, आत्मज्ञानी और धर्मात्मा चारों प्रकार के सत्य धर्म को जानने वाले आत्महित साधक ऐसे महात्माओं को सब लोग स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥

छन्दजातो अनक्खातो मनसाच फुटो सिया ।
कामेसु च अप्पटिबद्धचित्तो उद्धं सोतोति
वुच्चति ॥१०॥

अनिर्दिष्ट निर्वाण प्राप्ति की दृढ़ प्रतिज्ञा रख कर पवित्र ज्ञान द्वारा उस शान्तिमय निर्वाण को स्पर्श करे और रूपादि पंच

विषयों में जिसका मन प्रतिबद्ध न हो उसको ऊर्ध्वस्रोत (ऊर्ध्वरेता) नाम योगी कहते हैं ॥ अर्थात् वे लोग मृत्यु लोक से च्युत होकर ब्रह्मलोक वहाँ से भी क्रमशः ऊपर लोकों में जन्म लेते हुए मुक्त हो जाते हैं ॥ १० ॥

चिरप्पवासिं पुरिसं दुरतो सोत्थिमागतं ।
ञातिमित्तासुहज्जाचअभिनन्दन्तिआगतं॥११॥

जैसे विदेश से निरापद (निर्विघ्न) लौटते हुए बहुत दिनों के वियोगी पुरुष को अपने जाति मित्र हितार्थी लोग "स्वागतं ते भवतु" ऐसा वचन कह कर अत्यन्त मान सत्कार से संतुष्ट करते हैं ॥ ११ ॥

तथेव कतपुञ्ञम्पि अस्मा लोका परं गतं ।
पुञ्ञानि पतिगण्हन्तिपियंञातीवआगतं॥१२

ऐसे ही इस लोक से परलोक में गए हुए पुण्यात्मा का भी अपने पुण्यफल स्वर्ग में इष्ट मित्र के समान सन्मान करते हैं (अर्थात् वे जन्म जन्मान्तर में सदा सुखी होते हैं) ॥ १२ ॥

पियवग्ग १६

कोधं जहे विप्पजहेय्य मानं ।
संयोजनं समतिक्कमेय्य ॥
तं नामरूपस्मिं असज्जमानं ।
अकिञ्चनं नानुतपन्ति दुक्खा ॥१॥

क्रोध को त्याग करो, अहङ्कार को भी दूर रक्खो, विषयों में बन्धनरूपी आशा धर्म को भी हटा दो, नाम (चित्त) उसके आश्रय रूप देह में अनासक्त ऐसे अकिञ्चन (लेश मात्र भी जिसे रागादि विकार न हो) ऐसे आत्मज्ञानी महापुरुष को दुःख समूह आक्रमण नहीं करता है ॥ १ ॥

यो वे उप्पतितं कोधं रथं भन्तं व धारये ।
तमहं सारथिं ब्रूमि रस्मिगाहो इतरो जनो ॥२॥

जो नर मन में उठे हुए क्रोध को दौड़ते हुए रथ के समान शीघ्र रोक लेता है उसको मैं सारथी कहता हूं दूसरा अर्थात् क्रोध के अनुसार चलने वाले को केवल लगाम धारनेवाला कहता हूं ॥ २ ॥

अकोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने ।
जिने कदरियं दानेन सच्चेनालिकवादिनं ॥३॥

क्रोधी को क्षमा करके, दुष्ट जनों को सज्जनता से, कृपण को दान से अर्थात् कुछ देकर और मिथ्यावादी को सत्य से जीत लेना चाहिए ॥ ३ ॥

सच्चं भणे न कुज्झेय्य दज्जाअप्पस्मिं पि याचितो ।
एतेहि तीहि ठानेहि गच्छे देवान संतिके ॥४॥

सत्य वचन बोलना, क्रोध न करना, यदि कोई याचना करे तो कुछ भी दे देना (विमुख न जाने देना) इन तीनों धर्मों में से एक करके भी देवलोक प्राप्त होता है (सब धर्मों के पालन करने वालों का क्या कहना है। अर्थात् परम गति होती है ॥ ४ ॥

अहिंसका ये मुनयो निच्चं कायेन संवुत्ता ।
ते यंति अच्युतं ठानं यत्थ गंत्वा न सोचरे ॥५॥

जो धर्मात्मा लोग किसी की हिंसा नहीं करते नित्य ही देह (शरीर) का संयम करते और पाप कर्मों से बचे रहते हैं वे महात्मा अच्युत स्थान निर्वाण को प्राप्त होते हैं जहाँ शोक संताप का नाम भी नहीं है ॥ ५ ॥

सदा जागरमानानं अहो रत्तानुसिक्खिनं ।
निब्बानं अधिमुत्तानं अत्थं गच्छंति आसवा ॥६

दिन रात सदा जागरण करने वाले और शिक्षा धर्म के पालन करने वाले मुमुक्षु भिक्षुक गणों का मोह तृष्णा अस्त हो जाता है ॥ ६ ॥

पोराणमेतं अतुल नेतं अज्जतनामिव
निन्दन्ति तुण्हीमासीनं निन्दन्ति बहुभाणिनं
मितभाणिम्पि निन्दन्ति नत्थिलोकेअनिन्दितो७

हे अतुल! यह धर्म सनातन ही है। यह निन्दा प्रशंसा आजकल की बात नहीं है। लोग चुप रहने वाले की भी निन्दा किया

करते हैं । बहुत बोलने वाले की भी निन्दा करते हैं तथा मितभाषी (विचार कर बोलने वाले) की भी निन्दा करते हैं इसलिए लोक में अनिन्दितात्मा नहीं देखते हैं ॥ ७ ॥

न चाहु न च भविस्सति न चेतरहि विज्जति ।
एकन्तं निन्दितो पोसो एकन्तंवा पसंसितो ॥८॥

निश्चय करके निन्दा या प्रशंसा करने याेग्य पुरुष न हुआ और न है और न होगा अर्थात् गुण दोष सब में हैं ॥ ८ ॥

यञ्चे विञ्ञू पसंसन्ति अनुविच्च सुवे सुवे ।
अछिन्नवुत्तिं मेधाविं पञ्ञासीलसमाहितं ॥९॥
नेक्खं जम्बोनदस्से व को तं निन्दितुमरहति ।
देवा पि तं पसंसन्ति ब्रह्मुणापि पसंसितो ॥१०॥

जिस निष्कलंक वृत्ति स्मृतिमान् प्रज्ञाशील महात्मागण को विद्वान् लोग प्रतिदिन प्रातःकाल खोज करके प्रशंसा किया करते हैं। सौ वार धोये हुए जम्बुनद (जम्बु नाम नद से उत्पन्न अतिश्रेष्ठ सुवर्ण) सुवर्ण के समान उस महात्मा की कौन निन्दा कर सकता है । उनको तो देवता और ब्रह्मागण भी स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥

कायपकोपं रक्खेय्य कायेन संवुत्तो सिया ।
कायदुच्चरितं हित्वा कायेन सुच्चरितं चरे ॥११॥

देह के प्रकोप को (प्राणि-हिंसा, परद्रव्य-हरण, पर-दारा-सहवास इत्यादि बुराइयों से) रक्षा करो—देह को प्राणिहिंसादि (जीव वध) से बचाओ । देह के दुश्चरित्र (प्राणिहिंसादि) को छोड़कर और शरीर से सत् चरित्र का आचरण करो ॥ ११ ॥

वचीपकोपं रक्खेय्य वाचाय संवुत्तो सिया ।
वचीदुच्चरितं हित्वा वाचाय सुच्चरितं चरे ॥१२॥

वाक् के प्रकोप (मिथ्या और कठोर निरर्थक वकवाद) को रोकना तथा वार्ता करके पापों से अपने को रक्षित करना बात के दुश्चरित्र को त्याग कर सत् चरित्र का व्यवहार रखना चाहिए ॥ १२ ॥

मनोपकोपं रक्खेय्य मनसा संवुत्तो सिया ।
मनोदुच्चरितं हित्वा मनसा सुच्चरितं चरे ॥१३॥

मन के प्रकोप (लालच ईर्ष्या मिथ्याकल्पना) को रोक रखना, मन करके उन पापों से रक्षित रहना, मन के दुश्चरित्र को छोड़ मन से सत् चरित्र का व्यवहार करना चाहिए ॥ १३ ॥

कायेन संवुत्ता धीरा अथो वाचाय संवुत्ता ।
मनसा संवुत्ता धीरा ते वे सुपरिसंवुता ॥१४॥

जो विद्वान् लोग देह करके संरक्षित और वाक् करके संरक्षित एवं मन करके संरक्षित रहते हैं । वे ही सब से उत्तम संयत द्वार होते हैं ॥ १४ ॥

कोधवग्ग १७

पण्डुपलासोव दानिसि
यमपुरिसापि च तमुप्पट्ठिता।
उय्योगमुखे पिच तिट्ठसि
पाथेय्यं पिच ते न विज्जाति ॥ १ ॥

हे सेवक! अब तू पके हुए पत्र के समान हुआ। यमदूतगण भी तेरे समीप उपस्थित हो गये हैं। अब तू मृत्यु के मुख में खड़ा हुआ है परन्तु तेरे पास परलोक साधक कलेवा रूप पुण्य भी नहीं मालूम होता ॥ १ ॥

सो करो हि दीपमत्तनो।
खिप्पं वायम पण्डितो भव ॥
निद्धन्तमलो अनङ्गणो।
दिव्वं अरियभूमि मेहिसि ॥ २ ॥

इसलिये तू समुद्र में डूबे हुए मनुष्यों के जीवनाधार द्वीप के समान अपने परलोक साधक पुण्य कार्य्य को कर। शीघ्र उपाय करो और होशियार होजा ऐसा करेगा तो राग द्वेषादि मल से रहित होकर आर्य्य भूमी शुद्धावास नाम ब्रह्मलोक को पावेगा ॥२॥

उपनीतवयो च दानिसि
सम्पयातोसि यमस्ससन्तिकं।
वासोपि च ते नत्थि अन्तरा।
पाथेय्यम्पि च ते न विज्जाति ॥ ३ ॥

हे उपासक ! अब तू गत-यौवन होगया (जवानी ढल गई बूढ़ा हुआ) यमराज के निकट जा रहा है । इस लोक से परलोक जाते समय तुम्हारा ठहराव भी नहीं (एक शरीर त्यागते ही दूसरा शरीर धारण कर लेता है तो बीच में ठहर कर योग दानादि पुण्य साधन का समय कहाँ है) और परलोक में भोगने के लिये तुम्हारे साथ पुण्य रूपी कलेवा भी नहीं देखते हैं ॥ ३ ॥

सो करोहि दीपमत्तनो
खिप्पं वायम पण्डितो भव ।
निद्धन्तमलो अनङ्गणो
न पुन जातिजरं उपेहीसि ॥ ४ ॥

इससे तू प्रतिष्ठा भूत द्वीप के समान अपना सुखकारी पुण्य कर्म कर । जल्दी उद्योग कर होशियार हो जा । ऐसा करने से निर्मल तृष्णारहित अरहन्त (परमहंस) होकर पुनः जन्म जरा (बुढ़ाई) धर्म को न प्राप्त हो अमर हो जावेगा ॥ ४ ॥

अनुपुब्बेन मेधावी थोकं थोकं खणे खणे ।
कम्मारो रजतस्सेव निद्धमे मलमत्तनो ॥ ५ ॥

जैसे सोनार चाँदी के मैल को निकाल कर स्वच्छ निर्मल कर देता है वैसे ही बुद्धिमान् जन भी शरीरस्थ राग द्वेषादि अपने अन्तः करण मल को क्रम क्रम थोड़ा थोड़ा क्षण २ निकाल डाले ॥ ५ ॥

अयसा व मलं समुट्ठितं
तदुट्ठाय तमेव खादति ।

एवं अतिधोनचारिनं
सककम्मानि नयन्ति दुग्गतिं ॥६॥

जैसे लोह से उत्पन्न हुआ कीट (अर्थात् मुर्चा) उस लोह को ही नष्ट कर देता है वैसे ही अधर्म से अहार विहार आचरण करने वाले का पाप कर्म उस के जीवन को नष्ट भ्रष्ट कर नरक में ढकेल देता है॥ ६॥

असज्ज्ञायमला मन्ता अनुट्ठानमला घरा।
मला वण्णस्स कोसज्जं पमादो रक्खतो मलं॥७

अनभ्यास (बारम्बार विचार न करने से) विद्या मलीन हो जाती है, परिष्कार (मरम्मत) न करने से घर नष्ट हो जाता है, आलस्य करने से शरीर की शोभा घट जाती है, धार्मिकों का प्रमाद ही (भूल जाना) मल है अर्थात् प्रमाद से धर्म नष्ट हो जाता है॥७॥

मलित्थिया दुच्चरितं मच्छेरं ददतो मलं।
मलावे पाप का धम्मा अस्मि लोके परह्मि च॥८॥

स्त्रियों का व्यभिचार मल है। दाता का कृपणता मल है। इस लोक तथा परलोक का मल पाप कर्म है॥ ८॥

ततो मला मलतरं अविज्जा परमं मलं।
एतं मलं पहत्वान विमला होथ भिक्खवो॥६॥

इन पूर्वोक्त मलों से भी एक अत्यन्त निकृष्ट मल अविद्या है, हे भिक्षुक लोगो! इस विनाश के मूल अविद्या मल को परिशोध कर निर्मल हो जाओ॥

अर्थात् विद्या से अविद्या मल को दूर कर के हृदय को निर्मल कर डालो॥ ९॥

सुजीवं अहिरिकेन काकसूरेण धंसिना ।
पक्खन्दिना पगब्भेन संकिलिट्ठेन जीवितं१०॥

निर्लज्ज कौआ के समान पर-धन-हरण में शूरवीर अनर्थकारी (परगुण-विनाशक) पाखण्डी कठोर हृदय वाले पापात्मा के जीविका का निर्वाह अति सरल है ॥ १० ॥

हिरीमताच दुज्जीवं निच्चं सुचिगवेसिना ।
अलीनेनापगब्भेन सुद्धाजीवेन पस्सता ॥११॥

लज्जाशील नित्य परिशुद्धाभिलाषी या विशुद्धाचार अन्वेषी सत्यवक्ता शान्तेन्द्रिय (चंचलता रहित) धार्मिक जीविका से निर्वाह करते हुए सज्जनों का निर्वाह अति कष्ट है अर्थात् सज्जनों के धार्मिक जीविका में अनेक विघ्न हैं। परन्तु वह कष्ट इस लोक के लिये ही है परलोक में नहीं ॥ ११ ॥

यो पाणमतिपातेति मुसावादञ्च भासति ।
लोके अदिन्नं आदियति परदारञ्च गच्छति ॥१२॥
सुरामेरयपानञ्च यो नरो अनुयुञ्जति ।
इधेव मेसो लोकस्मिं मूलं खनति अत्तनो ॥१३॥

जो मूढ़, जीव घात करे और झूठ बोले, लोक में बिना दिए हुए परधन को हरण करे, पर-दारा सेवन करे, सुरा (दारू) आदि मादक पदार्थों का पान करे—वह मूढ़ इस लोक में ही अपने मूल को खोदता है अर्थात् अपने को आपही नष्ट कर देता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

एवं भो पुरिस जानाहि पाप धम्मा असञ्ञता ।
मातं लोभो अधम्मो च चिरं दुक्खाय रन्धसु ॥१४

हे दुष्टो ! पाप धर्म जो है सो मेरा रक्षक नहीं है, ऐसा जानो। इस से तुम लोग लोभ एवं क्रोध को दीर्घ काल तक नरक में भोगने के लिये मत पकाओ अर्थात् बारम्बार मत बढ़ाओ ॥ १४ ॥

ददाति वे यथासद्धं यत्थ पसादनं जनो ।
तत्थ सो मङ्कु भावं वा परेसं पान भोजने ।
न सो दिवा वा रत्तिंवा समाधिं अधिगच्छति ॥१५

लोग यथाशक्ति जिसकी जहाँ प्रसन्नता है वहाँ दान देते हैं। दूसरे के उस दानादि यज्ञ में जो डाह रखते हैं वह ईर्ष्या दिन रात्रि कभी भी समाधि को प्राप्त नहीं होता है ॥ १५ ॥

यस्स चेतं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं ।
स वे दिवा वा रत्तिं वा समाधिं अधिगच्छति ॥१६॥

जिसका यह ईर्ष्या द्वेष भली प्रकार छिन्न होकर जड़ समेत उखड़ गया हो वह महात्मा ही दिन रात्रि अर्थात् सर्वकाल में समाधि को प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो गहो ।
नत्थि मोहसमं जालं नत्थितह्नासमा नदी ॥१७॥

राग समान अग्नि नहीं, क्रोध समान ग्राह नहीं, मोह समान जाल नहीं और तृष्णा के समान नदी नहीं ॥१७॥

सुदस्सं वज्जमञ्ञेसं अत्तनो पन दुद्दसं ।
परेसं हि सो वज्जानि ओपुणाति यथा भुसं ।
अत्तनो पन छादेति कलिंव कितवा सठो ॥१८॥

पराये का दोष जल्दी से देख लेता है, अपना दोष जल्दी नहीं देखता, पर-दोष-दर्शी वह मूर्ख दूसरों के दोष को भूसी के समान धून डालता है, यह मूर्ख अपने दोष को जैसे साकुनिक बहेलिया (पंक्खी मारने वाला) छल से निज देह को छिपाता है वैसे ही छिपा रखता है ॥ १८ ॥

परवज्जानुपस्सिस्स निच्चं उज्झानसञ्ञिनो ।
आसवा तस्स वड्ढन्ति आरासो आसवक्खया१९

पर-दोष दर्शी नित्य निन्दक दुष्टों का काम क्रोध बढ़ते जाता है और वह निर्वाण से दूर ही रहता है ॥ १९ ॥

आकासेव पदं नत्थि समणो नत्थि वाहिरे ।
पपञ्चाभिरता पजा निपपञ्चा तथागता ॥२०॥

जैसे निराकार आकाश में किसी के पद का चिह्न नहीं रहता है वैसे ही अनन्तज्ञानी भगवान् बुद्ध के निर्दिष्ट मार्ग से बाह्य मार्ग में (मोह तृष्णा का निर्मूलक) श्रमण नाम धर्म नहीं है ॥ २० ॥

आकेसेव पदं नत्थि समणो नत्थि वाहिरे ।
सङ्खारा सस्सता नत्थि नत्थिवुद्धानमिञ्जितं ॥२१

प्रजागण मोह तृष्णादि प्रपंच में मग्न है किन्तु बुद्ध गण प्रपंच से अलग रहते हैं, यावत् संस्कार नित्य नहीं और बुद्धों के ज्ञान भी कभी विचलित नहीं है ॥ २१ ॥

मलवग्ग १८

न तेन होति धम्मट्ठो ये नत्थं सहसा नये ।
यो च अत्थं अनत्थं च उभो निच्छेय्य पण्डितो॥१॥
असाहसेन धम्मेन समेन नयति परे ।
धम्मस्स गुत्तो मेधावी धम्मट्ठोति पवुच्चति ॥२॥

जिसने बिना विचारे कोई एक पक्ष को लेकर (कोई मामले का) न्याय करे इस हठ बिचार से वह न्यायी नहीं होता है और जो उचित या अनुचित दोनों को विचार कर बलात्कार छोड़ धर्मपूर्वक पक्षपात रहित अपर लोगों का न्याय करे वही धर्मात्मा पण्डित न्यायी कहाता है ॥१-२॥

न तेन पण्डितो होति यावता बहुभासति ।
खेमी अवेरी अभयो पण्डितोति पवुच्चति ॥३॥

जो बहुत बोलता है इस बहुत बोलने से वह पण्डित नहीं । जो कल्याणकारी बैर रहित अर्थात् दयालु निर्भय पुरुष हो वही पण्डित कहलाता है ॥३॥

न तावता धम्मधरो यावता बहुभासति ।
यो च अप्पम्पि सुत्वान धम्मं कायेन पस्सति
स वे धम्मधरो होति यो धम्मं नप्पमज्जति ॥४॥

जिस अध्ययनादि कारण से बहुत ही बकते हैं उस से धर्मधर नहीं हो सकते हैं जो विद्वान् थोड़ा भी सुन कर धर्म का यथार्थ आचरण करता है और अपने कर्त्तव्य कार्य्य में नहीं भूलता है निश्चय करके वही धर्मधर (धार्मिक) होता है ॥४॥

न तेन थेरो सो होति येनस्स पलितं सिरो ।
परिपक्को वयो तस्स मोघजिंगोति वुच्चति ॥५॥
यह्मि सच्चञ्च धम्मोच अहिंसा सञ्ञमो दमो ।
स वे वन्तमलो धीरो थेरो इति पवुच्चति ॥६॥

जिससे कि उसके सिर का केश पक गया है उस से वह वृद्ध नहीं होता है। उस के बुढ़ापा को वृथा जीर्ण ही कहते हैं । जिस के मन में चार प्रकार का सत्य और सम्यक् दृष्टि आदि नव प्रकार के धर्म, दया, संयम और इन्द्रिय-दमन हो । उस निर्मल धैर्य्यवान् महापुरुष को ही स्थविर (वृद्ध) ऐसा कहते हैं। बौद्ध सम्प्रदाय में जो बीस वर्ष तक संन्यास धर्म पालन करे उसी को स्थविर उस से अधिक महात्माओं को महास्थविर की पदवी दी जाती है ॥६॥

न वाक्करणमत्तेन वण्णपोक्खरताय वा ।
साधुरूपो नरो होति इस्सुकी मच्छरी सठो ॥७॥

जो ईर्ष्यी मत्सर (कृपण) और सठ है वह प्रिय वचन कहने से तथा सौंदर्यता से साधु रूप अर्थात् महात्मा नहीं होता है ॥७॥

यस्स चेतं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं ।
स वन्तदोसो मेधावी साधुरूपोति वुच्चति ॥८॥

जिसके ये सम्पूर्ण ईर्ष्यादि (दोष) भली प्रकार छिन्न हो गये हों और जड़ मूल से उखड़ गये हों उस निर्मल धैर्य्यवान् महात्मा को ही साधु कहते हैं ॥८॥

न मुण्डकेन समणो अब्बतो अलिकं भणं ।
इच्छालोभसमापन्नो समणो किं भविस्सति ॥९॥

व्रत रहित मिथ्या वचन कहते हुए (झूठा) सिर मुड़ाने मात्र से श्रमण नहीं हो सकता । इच्छा लोभ से युक्त वह कैसे श्रमण होगा (जहां अप्राप्ति वस्तु में आकांक्षा हो उसका नाम इच्छा और प्राप्त विषय की भी इच्छा हो ऐसी आकांक्षा को लोभ कहते हैं ॥ ९ ॥

यो च समेति पापानि अणुथूलानि सब्बसो ।
समितत्ताहि पापानं समणोति पवुच्चति ॥१०॥

जो विद्वान् सूक्ष्म स्थूल पाप समूह को सब प्रकार से शान्त कर देते हैं । वही श्रमण है क्योंकि पाप की शान्ति होने से ही श्रमण ऐसा कहते हैं ॥१०॥ बुध के शिष्यों का नाम श्रमण है ।

न तेन भिक्खु सो होति
यावता भिक्खते परे ।
विसं धम्मं समादाय
भिक्खु होति न तावता ॥११

जिससे विषम कहिये पाप कर्म को करते हुए और दूसरों से भिक्षा मांगते हैं इस से भिक्षुक नहीं हो सकते अर्थात् मन मलिन (पापी) केवल भिक्षासन मात्र से भिक्षुक पदवी को प्राप्त नहीं हो सकता है ॥११॥

योध पुञ्ञं च पापं च वाहित्वा ब्रह्मचरियवा ।
सङ्खाय लोके चरति स वे भिक्खुति वुच्चति॥१२

जो विद्वान् इस लोक में पुण्य पाप दोनों को छोड़ कर नियत ब्रह्मचारी है और विचार पूर्वक धर्माचरण करता है उसे भिक्षुक कहते हैं ॥१२॥

न मोनेन मुनी होति मूढरूपो अविद्दसु ।
यो च तुलं व पग्गह्य वरमादाय पण्डितो॥१३॥
पापानि परिवज्जेसि स मुनि तेन सो मुनि ।
यो मुणाति उभो लोके मुनी तेन पवुच्चति॥१४॥

शास्त्र-हीन मूर्ख होकर मौन धारण करने से मुनि नहीं हो सकता है। जो विद्वान् तराजू लेकर तौल करने के समान अच्छे धर्म को जान कर पाप कर्म को त्याग देता है तथा आत्म और पर दोनों के हितार्थ को समान जानता है इससे उस को मुनि कहते हैं ॥१३-१४॥

न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति ।
अहिंसा सब्बपाणानं अरियोति पवुच्चति ॥१५॥

जो प्राणियों की हिंसा करते हैं वे आर्य्य नहीं होते हैं और जो सब प्राणियों की हिंसा त्याग देते हैं वेही आर्य्य कहलाते हैं। (आर्य्य लोगों को किसी प्रकार की हिंसा न करना चाहिये)

न सीलब्बतमत्तेन वाहुसच्चेन वा पुन ।
अथवा समाधिलाभेन विवित्तसयनेन वा ॥१६॥
फुसामि नेक्खमसुखं अपुथुज्जनसेवितं ।
भिक्खु विसासमापादि अपत्तो आसवक्खयं॥१७

हे भिक्षुगण! मुक्तिपद निर्वाण को विना प्राप्त किये शिक्षा शील शास्त्रों का ज्ञान और लौकिक समाधि का लाभ मात्र से विषयी लोग के असेवित निष्क्रम (परिव्राजक) सुख का प्राप्त हुआ है ऐसा विश्वास न करो॥ १६-१७। अर्थात् जो समाधि विषय वासना से कदाचित् विकार हो जाय वह लौकिक समाधि और जिस को किसी कारण से भी विकार न हो ऐसी अचल समाधि को लोकोत्तर समाधि कहते हैं। इस से जहाँ समाधि शब्द से लौकिक समाधि का ग्रहण करना चाहिये॥

धम्मट्ठवग्ग १९

मग्गानंठङ्गिको सेट्ठो सच्चानं चतुरो पदा ।
विरागो सेट्ठो धम्मानं द्विपदानं च चक्खुमा॥१॥

निर्वाण गामी जितने मार्ग हैं उन में सम्यक् दृष्टि आदि अष्टांग मार्ग श्रेष्ठ हैं। लोक में यावत् सत्य धर्म हैं उन में दुख, समुदय, निरोध, मार्ग, नाम चार सत्य धर्म श्रेष्ठ हैं। धर्मों में वैराग्य श्रेष्ठ है और मनुष्यों में सर्वज्ञानी बुद्ध भगवान ही श्रेष्ठ हैं॥ १ ॥

एसो व मग्गो नत्थञ्ञो दस्सनस्स विसुद्धिया ।
एतंहि तुह्मे पटिपज्जथ मारस्सेतं पमोहनं ॥२॥

तुम्हारे दृष्टि के विशेष शुद्धि के लिये यही एक मार्ग है इससे बढ़कर कोई दूसरा मार्ग नहीं है। इसी मार्ग पर तुम लोग चलो। यह मार्ग कामदेव को भी मोह कारक है अर्थात् सत्कर्म के विघ्नकारी कामदेव को मुग्ध कर अच्युत निर्वाण जाने का सीधा मार्ग है ॥२॥

एतं ही तुह्मे पटिपन्ना दुक्खस्सन्तं करिस्सथ ।
अक्खातो वो मया मग्गो अञ्ञाय सल्लसन्थनं॥३

हे भिक्षुकगण! तुम लोग इसी मार्ग पर चढ़ कर विषयाधीन सांसारिक दुखों की समाप्ति करो। राग द्वेषादि शल्यों अर्थात् कांटों के स्थान तुल्य इस संसार को जान कर उस से विमुक्त होने का उपाय रूप इस मार्ग को हमने प्रकाशित किया है॥ ३ ॥

तुह्मेहि किच्चं आतप्पं अक्खातारो तथागता ।
पटिपन्ना पमोक्खन्ति झायिनो मारबन्धना ॥४॥

तुम लोगों को अपना कर्त्तव्य कार्य्य करना चाहिये । बुद्ध लोग केवल उपदेश ही करते हैं इस मार्ग में चलने वाले ध्यायी लोग कामदेव के बँधन से छुटकारा पा जाते हैं । अर्थात् बुद्ध लोगों ने भव-बन्धन से छूटने के लिये उपाय बतला दिया है किन्तु उद्योग करना तुम्हारे अधीन है । उपदेशानुसार उद्योगी पुरुष भवबन्धन से छुटकारा पाते हैं ।

सव्वे सङ्खारा अनिच्चाति यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्विन्दति दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया॥५॥

सब संस्कार अनित्य हैं जिस समय ऐसा ज्ञान अन्तः करण में भासता है उसी वक्त इस दुःखमय संसार से आशा निवृत्त हो जाती है और यही निर्वाण-प्राप्ति का सुगम मार्ग है ॥५॥

सव्वे सङ्खारा दुक्खाति यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्विन्दति दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया६॥

सम्पूर्ण शुभाशुभ संस्कार दुःखमय हैं ऐसा जब योगी अपने अन्तःकरण में देखता है तब सब दुःखमय कंटीले संसार से आशा निवृत्त हो जाती है यही मार्ग परिशुद्ध निर्वाण जाने के लिये है ॥६॥

सव्वे धम्मा अनत्ताति यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्विन्दति दुखे एस मग्गो विसुद्धिया७॥

सब पंच स्कन्ध अनात्मा है अर्थात् कोई वस्तु मेरा नहीं है जिस से सदा अच्युत रहे । ऐसा जब निर्मल ज्ञान भासता है तब संकटमय संसार की अनिच्छा हो जाती है अर्थात् आशा छिन्न हो जाती है यही मार्ग निर्वाण के लिये है ॥७॥

उट्ठानकालम्हि अनुट्ठानो
युवा बली आलसियं उपेतो ।
संसन्नसंकप्पमनो कुसीतो
पञ्ञाय मग्गं अलसो न विन्दति ॥ ८ ॥

उठने के समय नहीं उठता, जवान और बली होकर भी आलस्ययुक्त मिथ्या संकल्पवाला, हीन-पराक्रमी ऐसे कापुरुष को परम विशुद्ध ज्ञान का मार्ग नहीं मिलता है ॥ ८ ॥

वाचा नुरक्खी मनसा सुसंवुतो
कायेन च अकुसलं न कयिरा ।
एते तयो कम्मपथे विसोधये
आराधये मग्गं इसिपवेदितंति ॥ ९ ॥

सदा वाक् के संयम मन के संयम को रखना और शरीर से भी पाप कर्म न करना यही तीनों कर्म पथ को शोधना चाहिए तथा ऋषिगण उपदिष्ट अष्टाङ्गिक मार्ग की आराधना करें अर्थात् योगी को पहिले दैहिक वाचिक मानसिक तीन प्रकार के पापों को शोध कर पवित्र योग मार्ग को प्राप्त करना चाहिये ॥ ९ ॥

योगा वे जायती भूरि अयोगा भूरिसङ्खयो।
एतं द्वेधा पथं ञत्वा भवाय विभवाय च ।
तथत्तानं निवेसेय्य यथा भूरि पवड्ढति ॥ १० ॥

निश्चय कर के योग से प्रज्ञा (विशेष ज्ञान) उत्पन्न होती है और अयोग अर्थात् योग न करने से प्रज्ञा भ्रष्ट हो जाती है वृद्धि (योग)

और हानि (अयोग) इन दोनों मार्गों को जान कर आत्मा को ऐसा रखना चाहिये कि जिस से प्रज्ञा बढ़े ॥ १० ॥

वनं छिन्दथ मारुक्खं वनतो जायति भयं।
छेत्वा वनं वनथञ्च निब्बना होथ भिक्खवो ॥११॥

हे भिक्षुक लोगो! आशारूपी वन को काट डालो किन्तु जड़ रूप पेड़ को नहीं। आशारूपी वन से ही नाना प्रकार के भय उत्पन्न होते हैं वन (स्थूल तृष्णा) और वनत्थ (सूक्ष्मतृष्णा) दोनों को काट कर निर्वन अर्थात् निराश्रित हो जावो ॥ ११ ॥

यावंहि वनत्थो न विज्जति
अनुमत्तोपि नरस्स नारिसु।
पटिवद्धमनो व ताव सो
वच्छो खीरपको व मातरि ॥ १२ ॥

जिस नर की स्त्रियों में अणु मात्र भी आसक्ति रहेगी तथा जबतक छिन्न न हो जायगी तबतक वह मूर्ख दूधपीने वाले बछड़े के तुल्य माता का बद्ध ही बना रहेगा ॥ १२ ॥

उच्छिन्द सिंनेह मत्तनो
कुमुदं सारदिकं व पाणिना।
सन्तिमग्गमेव ब्रूहय
निब्बाणं सुगतेन देसितं ॥ १३ ॥

शरद ऋतु में फूले हुए कमल को तोड़ने के समान आत्म-स्नेह भी तोड़ डालना और शान्तिमार्ग को ही बढ़ाना चाहिये

क्योंकि बुद्ध भगवान ने अच्युत सुख निर्वाण का ही उपदेश किया है॥ १३॥

इध वस्सं वसिस्सामि इध हेमन्तगिम्हिसु।
इति बालो विचिन्तेति अन्तरायं न बुज्झति॥१४

जहां हम लोग चौमास भर रहेगा और जहां हम लोग हेमन्त ग्रिष्म भर रहेगा इसी प्रकार मन्द बुद्धि लोग चिन्ता करते हैं परन्तु इसके बीच में क्या दशा होगी यह विचार नहीं करते हैं॥ १४॥

तं पुत्तपसुसम्मत्तं व्यासत्तमनासं नरं।
सुत्तं गामं महोघोव मच्चु आदाय गच्छति॥१५

जैसे बाढ़ सोये हुए ग्राम को बहा ले जाती है उसी तरह से पुत्र कलत्र पशु आदि में आसक्त लोगों को यमराज मार ले जाता है॥ १५॥

न सन्ति पुत्ता ताणाय न पिता नापि बन्धवा।
अन्तकेनाधिपन्नस्स नत्थि ञातिसु ताणता॥१६

जब मनुष्य के समीप मृत्यु आजाती है तो माता पिता पुत्र कलत्र बन्धु बान्धव कोई भी रक्षा के लिए नहीं है तथा मृत्युग्रस्त मनुष्य को ज्ञातियों में कोई भी रक्षा करने की शक्ति नहीं है॥ १६॥

एतमत्थवसं ञत्वा पण्डितो सीलसंवुतो।
निब्बाणगमनं मग्गं खिप्पमेव विसोधये॥१७॥

इस प्रकार परस्पर रक्षा के अभाव को जान कर सुशिक्षित पण्डित जन निर्वाण जाने के लिये शीघ्र ही मार्ग को शोध लेवें॥१७॥

"मग्गवग्ग २०"

मत्ता सुखपरिचागा पस्से चे विपुलं सुखं ।
चजे मत्ता सुखं धीरो सम्पस्सं बिपुलं सुखं॥१॥

अणु मात्र विषय सुख त्यागने से महत् सुख लाभ को यदि देखें तो सुखाभिलाषी विद्वान् पुरुष क्षणिक विषय सुख को त्याग देवे ॥ १ ॥

परदुखुप्पदानेन अत्तनो सुख मिच्छति ।
बेरसंसग्गसंसट्ठो बेरा सो न परिमुच्चति ॥ २ ॥

दूसरों को दुख देकर जो अपने सुख की इच्छा करते हैं तो वे पुरुष बैर संसर्ग दोष से दूषित हो बैरत्व से छुटकारा नहीं पा सकते हैं ॥ २ ॥

यं हि किच्चं तदपविद्धं अकिच्चं पन कयिरति ।
उन्नलानं पमत्तानं तेसं वड्ढन्ति आसवा ॥ ३ ॥

जो भिक्षुक अपने कर्त्तव्य कार्य्य को परित्याग कर अकर्त्तव्य कार्य्य करता है ऐसे अति घमण्डी आलसियों की विषयवासना प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है ॥ ३ ॥

येसं च सुसमारद्धा निच्चं कायगता सति ।
अकिच्चं ते न सेवन्ति किच्चे सातच्च कारिनो ।
सतानां सम्पजानानं अत्थंगच्छन्तिआसवा॥४॥

जिन लोगों का दृढ़ उद्योग है । और नित्य ही आत्मा में ध्यान रखते हैं वे अकर्त्तव्य पाप कर्म की सेवा नहीं करते हैं वे

आत्महित साधन में बराबर लगे रहते हैं ऐसे सज्जन ज्ञानियों को विषयवासना छूट ही जाती है ॥ ४ ॥

मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वेच खत्तिये ।
रठ्ठं सानुचरं हन्त्वा अनिघो याति ब्राह्मणो ॥५॥

यह लकुण्टक भद्रिय नाम भिक्षुक, तृष्णा रूपी माता, अहङ्कार रूपी पिता, और शाश्वत उच्छेद नाम मिथ्यदृष्टि रूपी दो क्षत्रिय राजा, तथा नन्दी राग रूपी अनुचर समेत, चक्षु श्रोत्रादि बारह प्रकार के आयतन रूपी राज्य को विनष्ट कर दुःखरहित निराशा भाव को प्राप्त हुए हैं ॥ ५ ॥

आत्मा को नित्य अविनाशी मानने वाले को शाश्वत मिथ्यादृष्टि कहते हैं। पुनर्जन्म न मानने वाले को उच्छेद दृष्टि कहते हैं। पाप पुण्य के उत्पत्ति स्थान इन्द्रियों को, आयतन कहते हैं। वे १२ हैं यथा चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, त्वक्, रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श, धर्म, मन। नन्दीराग नाम विषयासक्त राग को ही कहते हैं ॥

मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वेच सोत्थिये ।
वेय्यग्घ पंचमं हन्त्वा अनिघो याति ब्राह्मणो ॥६॥

यह भिक्षु तृष्णा रूपी माता अहङ्कार रूपी पिता और शाश्वत उच्छेद नाम दो ब्राह्मण राज तथा काम छन्दादि पंच प्रकार के निरावरण धर्म (सत्कर्म के बाधक धर्म) को विध्वंस कर दुःखरहित निराशाभाव को प्राप्त हुए हैं ॥ ६ ॥

काम छन्द (विषय भोगेच्छा) (व्यापाद) ईर्ष्या द्वेष थिनमिद्ध (निद्रा तन्द्रा आलस्य रूप) उद्धच्च (किसी काम में मन न लगाना) विचिकित्सा (सत् असत् कार्य्य में संशय होना) ये पाँच धर्म सत्कार्य्य में विघ्न रूप होने से निरवारण कहाते हैं ॥

सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवाच रत्तोच निच्चं बुद्धगता सति ॥७॥

जो लोग दिन रात बुद्ध भगवान के पवित्र गुणों का ध्यान रखते हैं वे गौतम श्रावक लोग सदा निर्विघ्न जागृत होते हैं ॥ ७ ॥

सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं धम्मगता सति ॥८॥

दिन रात्रि और नित्य जिनकी सत्य धर्म में स्मृति रहती है वे गौतम श्रावक लोक सदा निरापद जागृत होते हैं ॥ ८ ॥

सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं सङ्घगता सति ॥९॥

जो लोग दिन रात्रि और नित्य बुद्ध भगवान के आशातीत शिष्य महात्माओं के गुणों में ध्यान रखते हैं वे गौतम श्रावक लोग सदा निरापद जागृत होते हैं ॥ ९ ॥

सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं कायगता सति ॥१०॥

जिन लोगों का दिन राति नित्य निज आत्मा में ध्यान रहता है वे गौतम श्रावक लोग सदा निरापद जागृत होते हैं ॥१०॥

सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रात्तो च अहिंसाय रतो मनो ॥११॥

जिन लोगों का मन दिन रात्रि और नित्य अहिंसा में रत है अर्थात् मैत्री भावना में रत हैं वे गौतम श्रावक लोग सदा निरापद जागृत होते हैं ॥ ११ ॥

सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।
येसं दिवा च रत्तो च भावनाय रतो मनो॥१२॥

जिनका मन दिन रात्रि भावना (ध्यान) में लीन है वे गौतम श्रावक लोग सदा निरापद जागृत होते हैं ॥ १२ ॥

दुप्पब्बज्जं दुरभिरमं दुरावासा घरा दुक्खा ।
दुक्खासमानसंवासो दुक्खानुपतितद्धगु ।
तस्मा न चाद्धगुसिया न च दुक्खानुपतितो ॥१३

लोक में परिव्राजक होना बड़ा कठिन है, परिव्राजक होकर भी मन को परिशुद्ध रखना बड़ा कठिन है। धर्मपूर्वक गृहस्थाश्रम में रहना भी बड़ा ही कठिन है।

और मत भेद अर्थात् विवाद करने वालों के साथ भी रहना बड़ा दुख है संसार की यात्रा घोर दुख में पतित होता है इस से सुदीर्घ संसार यात्रा तथा घोर दुःखों में भी पतित न होना चाहिये ॥ १३ ॥

सद्धो सीलेन सम्पन्नो यसोभोगसमप्पितो ।
यं यं पदेशं भजति तत्थ तत्थेव पूजितो ॥१४॥

श्रद्धायुक्त सुशीलवान् और यश भोग से समर्पित महात्मा गण जिस जिस देश में जाते हैं वहाँ २ पूजनीय होते हैं ॥ १४ ॥

दुरे सन्तो पकासेन्ति हिमवन्तो व पब्बतो ।
असंतेत्थ न दिस्सन्ति रत्तिं खित्ता यथा सरा ॥१५

सज्जन लोग दूरस्थ होने पर भी अपने निर्मल यश द्वारा हिमालय पर्वत के समान प्रकाशित होते हैं अन्धियारी रात्रि में चढ़ाई हुई तीर के समान समीपस्थ होने पर भी दुष्ट लोग नहीं प्रकाशित होते हैं ॥ १५ ॥

एकासनं एकसेय्यं एको चरमतन्दितो ।
एको दमयमत्तानं वनन्ते रमितो सिया ॥१६॥

एक ही आसन एक ही शय्या में सन्तोष रख आलस्य रहित अकेले ही विचर और एक ही आत्मा को दमन कर अकेले ही वन में विहार कर ॥ १६ ॥

पकिण्णकवग्ग २१

अभूतवादी निरयं उपेति ।
योवापि कत्वा न करोमीति चाह ।
उभोपि पेच्च समा भवन्ति ।
निहीनकम्मा मनुजा परत्थ ॥१॥

दूसरों को झूठा कलंक लगाने वाला और जिसने पाप कर्म करके भी हमने नहीं किया ऐसा कहा वे दोनों पापात्मा मरने के बाद परलोक में समान फल पाते हैं अर्थात् दोनों नरकगामी होते हैं ॥ १ ॥

कासावकण्ठा बहवो पापधम्मा असञ्ञता ।
पापा पापेहि कम्मेहि निरयं ते उप्पपज्जरे ॥२॥

पाप कर्म से असंयमित कषाय वस्त्र धारी बहुत से पाखण्डी लोग हैं वे पापी लोग निज कृत पाप कर्म से नरक में पचते हैं ॥ २ ॥

सेय्यो अयोगुलो भुत्तो तत्तो अग्गिसिखुपमो ।
यंचे भुञ्जेय्य दुस्सिलो रट्ठपिण्डं असञ्ञतो ॥३॥

तप्त अग्नि की शिखा के समान लोहे की गोली को निगलना श्रेष्ठ है परन्तु पुरवासी लोग के श्रद्धा से दिये हुए अन्न को संयम रहित दुःशील होकर खाना श्रेष्ठ नहीं है ॥ ३ ॥ अर्थात् अंगार के समान अति प्रज्वलित लोह को निगल जाने से एक ही जन्म की मृत्यु होगी परन्तु इन्द्रिय दमन विना संन्यासी-वेष धारण कर श्रद्धा से दिये हुए गृहस्थाश्रमों के अन्न वस्त्रादि को व्यवहार करना अनेक जन्म तक नरक में दुख भोगने का कारण है ॥ ३ ॥

चत्तारि ठानानि नरो पमत्तो ।
आपज्जति परदारुपसेवी ।
अपुञ्ञलाभं न निकामसेय्यं ।
निन्दं ततियं निरयं चतुत्थं ॥ ४ ॥

प्रमादयुक्त परदार-सेवनकारी मूर्खों को चार प्रकार की हीनावस्था प्राप्त होती है। जैसे पाप का लाभ, यथेष्ट निद्रा का अभाव, तीसरे लोकनिन्दा, चौथे नरकपतन। तात्पर्य्य यह कि दूसरों की स्त्रियों का भोग करने वाला प्रमादी, प्रथम तौ पापी, द्वितीय बेचैनी, तृतीय निन्दनीय, चतुर्थ नारकी होता है ॥ ४ ॥

अपुञ्ञलाभोच गतीच पापिका ।
भीतस्स भीताय रतीच थोकिका ।
राजाच दण्डं गरुकं पणेति ।
तस्मा नरो परदारं न सेवे ॥५॥

जिससे पाप का लाभ, परलोक गति की हीनता, भय से पीड़ित उस स्त्री के साथ रति करनेवाले भय पीड़ित उस पापी को सुख भी अल्प मात्र है और राजा भी कठिन दण्ड देते हैं, इससे पण्डित जन परदार-सेवा न करें (पराई स्त्री के सहवास में अनेकों दुख और पाप हैं) ॥ ५ ॥

कुसो यथा दुग्गहीतो हत्थमेवानुकन्तति ।
सामञ्ञं दुपरामट्ठं निरियाय उपकड्ढति ॥६॥

असावधानी से पकड़ने से कुशा हाथ को चीर देता है वैसे ही असावधान से धारण किया हुआ श्रमणधर्म (संन्यास धर्म) नरक

के लिये आकर्षण करता है ॥ सारांश यह कि धोखे से कुशा हाथ चीरता है संन्यासी का कपट या धोखा देने वाला वेष भी नरक में लेजाता है ॥ ६ ॥

यं किंचि सिथिलं कम्मं संकिलिट्ठं च यं वतं ।
सङ्कस्सरं ब्रह्मचरियं न तं होति महप्फलं ॥७॥

शिथिलता से किया हुआ शुभ कर्म से और दुष्ट चरित्रता से धारण किया हुआ व्रत से और शंका से कलंकित ब्रह्मचर्य्य से यथेष्ट फल नहीं प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

कयिरा चे कयिराथेनं दल्हमेनं परक्कमे ।
सिथिलोहि परिब्बजो भीयो आकिरते रजं॥८॥

यदि परिव्राजक वेष धारण करो तो उसे सादर भाव से धारण करो तथा दृढ़ता से पालन करो जो निरादर से पालन किया हुआ परिव्राजक धर्म है वह प्रायः रागद्वेषादि धूलि को बढ़ाता है ॥ ८ ॥

अकतं दुक्कतं सेय्यो पच्छा तप्पति दुक्कतं ।
कतं च सुक्कतं सेय्यो यं कत्वा ना नुतप्पति ॥९॥

दोषयुक्त पाप कर्म को न करना क्योंकि पाप कर्म से संताप होता है और जिस कर्म के करने से पीछे मन को संताप न हो ऐसे निर्दोष शुभ कर्म का करना उचित है ॥ ९ ॥

नगरं यथा पच्चन्तं गुत्तं सन्तरबाहिरं ।
एवं गोपेथ अन्तानं खणो वे मा उपच्चगा ।
खणातीताहि सोचन्ति निरयम्हि समप्पिता१०॥

जैसे सीमान्त स्थित नगर की भीतर बाहर हर प्रकार से रक्षा की जाती है (भीतरी उपद्रव तथा बाहरी शत्रुओं के घात्रे का प्रबन्ध किया जाता है) वैसे ही विद्वान् जनों को उचित है कि अपने आत्मा की रक्षा करें (जिस से भीतरी बाहरी पापकर्मों से बचे रहें) समय को व्यर्थ न खोना चाहिये। अपने कर्तव्य काम को छोड़ कर व्यर्थ समय खोने वाला मूर्ख नरक में जाकर पछताता है ॥ ९ ॥

अलज्जिता ये लज्जन्ति लज्जिता ये न लज्जरे ।
मिच्छादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं॥१०

अर्थ—जो लोग जहाँ लज्जा करना अयोग्य है वहाँ तो लजाते हैं और जहाँ लज्जा करना उचित है वहाँ लज्जा नहीं करते हैं मिथ्या कल्पना युक्त वे लोग दुर्गति को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

अभये भयदस्सिनो भये चा भयदस्सिनो ।
मिच्छादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं॥११

जहाँ भय नहीं देखना है वहाँ तो भय देखते हैं और जहाँ भय देखना चाहिये वहाँ तो भय नहीं देखते हैं ऐसे मिथ्या कल्पना करने वाले मूर्ख लोग अवश्य ही दुर्गति को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

अवज्जे वज्जमतिनो वज्जे चा वज्जदस्सिनो ।
मिच्छादिट्ठिसमादाना सत्तागच्छन्तिदुग्गतिं १२॥

जो लोग निर्दोष में दोष मानते हैं और दोष युक्त कर्म को निर्दोष समझते हैं ऐसे मिथ्या कल्पना करने वाले मूर्ख लोग अवश्य ही दुर्गति को प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

वज्जं च वज्जतो ञत्वा अवज्जं च अवज्जतो ।
समादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति सुग्गतिं १३॥

अर्थ—यथार्थ ज्ञानी लोग दोष के दोष निर्दोष के निर्दोष ही समझते हैं इस से वे लोग सत्‌गति के प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

निरयवग्ग २२

अहं नागोव संगामे चापातो पतितं सरं ।
अतिवाक्यं तितिक्खिस्सं दुस्सिल्लोहि बहुजनो १

मैं संग्राम में धनुष से छुटे हुए तीर समूह के सहने वाले हाथी के समान दुष्टों के अपमान सूचक वाक्य को क्षमा करूंगा अर्थात् सहन कर लूंगा क्योंकि इस लोक में शील संकोच रहित दुष्टजनही अधिक होते हैं ॥ १ ॥

दन्तं नयन्ति समितिं दन्तं राजाभिरूहति
दन्तो सेट्ठो मनुस्सेसु योतिवाक्यं तितिक्खति२॥

जैसे राजा लोग सुशिक्षित हाथी को ही सभा मण्डल में ले जाते हैं और सुशिक्षित हाथी को ही वाहन के काम में लाते हैं वैसे जो दुष्टों के अपमान को सह लेता है वही आत्मजिति महात्मा मनुष्यों में श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

वरमस्सतरा दन्ता आजानिय्या च सिन्धवा ।
कुञ्जरा च महानागा अत्तदन्तो ततो वरं ॥३॥

अश्वतर (खच्चर) और उत्तम जाति वाला अश्व (घोड़ा) और सिन्धु देश में उत्पन्न हुआ अश्व तथा नव कुंजर हाथी भी सुशिक्षित होने से ही श्रेष्ठ होते हैं । और उन सब से आत्मजित् श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

न हि एतेहि यानेहि गच्छेय अगतं दिसं
यथात्तना सुदन्तेन दन्तो दन्तेन गच्छति ॥४॥

जैसे आत्मजित् महात्मा गण पहिले इन्द्रिय दमन पीछे मोह तृष्णा का दमन करके स्वप्नों में भी अगम्य निर्वान को प्राप्त होता है वैसे घोड़ा हाथी इत्यादि इन असवारियें से कभी भी प्राप्त नहीं हो सकते हैं ॥ ४ ॥

धनपालको नाम कुञ्जरो
कटुकप्पभेदनो दुन्निवारयो ।
बद्धो कवलं न भुंञ्जति
सुमरति नागवनस्स कुञ्जरो ॥५॥

प्रकट हुई मद की रेखा से दुर्निवार्य्य धनपालक नाम हाथी बन्ध जाने से चारा नहीं खाते हैं सदा वह अपना निवास-स्थान नाग वन का ही स्मरण रखते हैं। भगवान् के समय में एक धनपालक नाम नवकुञ्जर था। लोगों ने किसी उपाय से उसे पकड़ लिया पर उसका मन जन्मभूमि तथा मातृ-सेवा में लगा हुआ था इस लिये उस ने अन्न जल एकदम से छोड़ दिया। भगवान् ने इसकी उपमा देकर मातृ-पितृ-सेवा का उपदेश किया ॥ ५ ॥

मिद्धी यदा होति महग्घसोच
निद्दायिता सम्परिवत्तसायी ।
महावराहो व निवापपुट्ठो
पुनप्पुनं गब्भमुपेति मन्दो ॥६॥

जब मन्दबुद्धि आलसी अति भोजन कारी शयन शील और चारा देकर पोसे हुए गृह सूकर के समान करवट फिर २ कर पड़ा रहता है इस से उस मन्दबुद्धि को बारम्बार जन्म लेना पड़ता है ॥ ६ ॥

इदं पुरे चित्त मचारि चारिकं
येनच्छकं यत्थकामं यथा सुखं।

तदज्जहं निग्गहेस्सामि योनिसो
हत्थिपभिन्नंविय अकुंसगाहो ॥७॥

यह मन पहिले यथेष्ट जहाँ इच्छा हो वहाँ सुखपूर्वक विचरण किया करता था जैसा अकुंशग्राही (हाथीवान) उन्मत्त हाथी को दमन करता है वैसे आज हैं भी उस चंचल दुर्वृत्त मलिन मन को दमन करूंगा ऐसा सत् विचार मन में लावे ॥ ७ ॥

अप्पमादरता होथ सचित्त मनुरक्खथ।
दुग्गा उद्धरथत्तानं पंके सन्नो व कुञ्जरो ॥८॥

हे भिक्षुक लोगो! तुम लोग आलस्य रहित हो अपने मन को ठीक रक्खो। पंक में धंसे हुए नव कुंजर के समान अतिदुर्गम स्थान से आत्मा को उद्धार करो अर्थात् पंकरूपी संसार से मन को हटा कर पंकरहित निर्वान में लगावो ॥ ८ ॥

सचे लभेथ निपकं सहायं
सद्धिं चरं साधुविहारि धीरं।
अभिभूय्य सब्बानि परिस्सयानि
चरेय्य तेनत्तमनो सतीमा ॥९॥

यदि ज्ञानी सत् चरित्रवाले धैर्य्यवान् सहायक की संगति मिले तो स्मृतिमान भिक्षु सम्पूर्ण रागद्वेषादि विपदों को त्याग कर उसके साथ हर्ष से विचरण करे ॥ ९ ॥

नोचे लभेथ निपकं सहायं
सद्धिं चरं साधुविहारि धीरं।

राजाव रट्ठं विजितं पहाय
एको चरे मातंगरञ्ञेव नागो ॥१०॥

यदि ज्ञानी सत् चरित्रवाला धैर्य्यवान् सहायक की संगति न मिलै तो अपने राज्य को त्याग कर अकेले विचरने वाले जनकादि राजा के समान तथा यूथ को छोड़ के मातंग नाम निर्जन वन में विचरने वाले पललेय्य नाम हाथी के समान रागद्वेषादि विपदों को हटा कर अकेले ही विचरण करो ॥ १० ॥

एकस्स चरितं सेय्यो
नत्थि बाले सहायता ।
एकोचरे न च पापानि कयिरा
अप्पो सुको मातंग रञ्ञेव नागो ॥११॥

अकेले विचरना श्रेष्ठ है परन्तु मूर्खों के साथ संगति करना अच्छा नहीं । मातंग नाम वन में एकचारी नव कुञ्जर हाथी के समान निश्चिन्त हो कर अकेले ही विचरण करो किन्तु पाप कर्म न करो ॥ ११ ॥

अत्थह्मि जातह्मि सुखा सहाया
तुट्ठी सुखा या इतरी तरेन ।
पुञ्ञं सुखं जीवितसङ्खयह्मि
सव्वस्स दुक्खस्स सुखं पहानं ॥१२॥

किसी कार्य्य के उपस्थित होने पर, मदद देने वाले मित्र के मिल जाने से सुखी होता है यथालाभ से जो तुष्टि अर्थात् संतोष है

वही सुख है मरते समय किया हुआ पुण्य सुखदायक है। सम्पूर्ण सांसारिक दुःख को त्याग देना सब से सुख है॥ १२॥

सुखा मेत्तेय्यता लोके अथो पेत्तेय्यता सुखा।
सुखा सामञ्ञता लोके अथोब्रह्मञ्ञता सुखा १३

लोक में मातृसेवा सुखदायक और पितृसेवा सुखदायक है। लोक में गृहत्यागी महात्मा गण की सेवा कल्याणदायक और सत्चरित्र वाले ब्राह्मणों की सेवा सुखदायक है॥ १३॥

सुखं याव जरा सीलं सुखा सद्धा पतिट्ठिता।
सुखोपञ्ञायपटिलाभोपापानंअकरणंसुखं॥१४

शील अर्थात् शिक्षा वृद्ध अवस्था तक सुखदायक है। धर्म में श्रद्धा होना कल्याणकारी है। वैराग्य ज्ञान प्राप्त होना सुखकारी। पाप कर्म न करना सब से सुखकारक है॥ १४॥

नागवग्ग २३

मनुजस्स पमत्तचारिनो ।
तह्ना वड्ढतिमालुवा विय ॥
सो-प्लावति हुराहुरं ।
फलमिच्छं व वनस्मिं वानरो ॥१॥

धर्म विचार से शून्य विषयी लोग की तृष्णा मालुनाम लता के समान दिन दिन बढ़ती है। ज्ञानशून्य वह मूर्ख वन में फल खोजने वाले बानर के समान अनेक योनि में जन्म लिया करते हैं ॥ १ ॥

यं एसा सहते जम्मी तह्ना लोके विसत्तिका ।
सोका तस्स पवड्ढन्ति अभिवुट्ठं व बीरणां ॥२॥

लोक में आसक्त स्वभाव वाली अतिनिकृष्ट यह तृष्णा जिस को लपटती है उस विषयी का शोक अर्थात् दुःख समूह वर्षा से सींची हुई वीरण नाम तृण के समान बढ़ती है ॥ २ ॥

यो चेतं सहते जम्मी तह्ना लोके दुरच्चयं ।
सोका तह्ना पपतन्ति ऊदविन्दुव पोक्खरा॥३॥

लोक में जो योगी आशा सूत्र बढ़ाने वाली दुरतिक्रम इस तृष्णा को योगबल से दबा देता है। कमल पत्र से जल बिन्दु के समान उस योगी का सम्पूर्ण शोक अर्थात् संसार दुःख छूट जाता है ॥ ३ ॥

तं वो वदामि भद्दं वो यावन्तेत्थ समागता ।
तह्नाय मूलं खणाथ ऊसीरत्थो व बीरणां ।
मा वो नलं व सोतो व मारो भंजि पुनप्पुनं ॥४॥

इससे तुम्हारे कल्याण के लिये उपाय बताता हूं, इस धर्म सभा में जितने उपस्थित थे वे लोग जैसे ऊसिर नाम ओषधि की इच्छा करनेवाले वीर्ण तृण के जड़ को खन डालते हैं वैसे ही तृष्णा के जड़ को खन डाले। जैसे जल की धारा नदी के तीर में उपजे हुये नलों को विध्वंस कर देती है वैसे अभ्यन्तर स्थित तृष्णा तुम्हें बारम्बार विनाश न करे ॥ ४ ॥

यथापि मूले अनुप्पद्दवे दल्हे ।
छिन्नोपि रूक्खो पुनरेव रूहति ॥
एवं पि तह्लानुसये अनुहते ।
निब्बत्तति दुक्खमिदं पुनप्पुनं ॥५॥

जैसे क्षत रहित जड़ दृढ़ता से रहे तो पेड़ के कट जाने से भी फिर पनपने लगती है वैसे अनुशय (अति सूक्ष्म रूप) तृष्णा छिन्न न होने से बारम्बार यह सांसारिक दुःख भोगना पड़ता है ॥ ५ ॥

यस्स छत्तिंसति सोता मनापसवना भुसा ।
वाहा वहन्ति दुद्दिट्ठिं संकप्पा रागनिस्सिता॥६॥

जिसकी मनोरञ्जक विषयों में बहने वाली अति प्रचण्ड छत्तिस प्रकार की आशा रूपी जलधारा है उस दुर्मति को रागमिश्रित संकल्प रूपी धारा बहा लेजाती है ॥ छत्तिस तृष्णा का अर्थ यह है कि चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, त्वक्, मन, रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श, धर्म, इन बारह में काम तृष्णा, भव तृष्णा, विभव तृष्णा इन तीनों से गुणाकर देने से छत्तिस प्रकार की हो जाती है ॥ ६ ॥

सवन्ति सब्बधि सोता लता उब्भिज्ज तिट्ठति ।
तंच दिस्वा लतं जातं मूलं पञ्ञाय छिन्दथ॥७॥

रूप शब्दादि सब विषयों में तृष्णा का स्रोत बहता है। सब विषयों में तृष्णा रूपी लता विस्तारित होकर रहती है। चारों ओर छाईहुई उस तृष्णा रूपी लता को देख कर योगी जनों को चाहिये कि उसके मूल को वैराग्य ज्ञान द्वारा खन डालें॥ ७॥

सरितानि सिनेहितानिच
सोमनस्सानि भवन्ति जन्तुनो।
ते सातसिता सुखेसिनो
ते वे जातिजरूपगा नरा॥८॥

जिसको विषय कामना और स्नेह तथा उस में हर्ष बराबर बना रहता है वे विषयासक्त सुखाभिलाषी लोग जन्म बुढ़ापा से सदा लिप्त रहते हैं॥ ८॥

तसिनाय पुरक्खता पजा
परिसप्पन्ति ससो व बाधितो।
संयोजनसंगसत्तका।
दुक्ख मुपेति पुनप्पुनं चिराय॥९॥

जाल से बंधे हुए शश (खरहा) के समान तृष्णा करके आच्छादित प्रजा लोग बारम्बार संसार में भटकते हैं। तृष्णा रूपी डोरी से बँधे हुए मूर्ख लोग दीर्घ काल तक बारम्बार सांसारिक दुख को प्राप्त होते हैं॥ ९॥

तसिनाय पुरक्खता पजा
परिस्सप्पन्ति ससो व बाधितो।

तस्मा तसिनं विनोदये
भिक्खु आकङ्खविरागमत्तनो ॥१०॥

जाल से बंधे हुए शश की तरह तृष्णा जाल से फँसे हुये प्रजा लोग सर्वदा संसार में ही घूमते हैं, इससे आत्मा की शुद्धि चाहने वाला भिक्षुक गण तृष्णा जाल को तोड़ डाले ॥ १० ॥

योनिब्बनत्थोवनाधिमुत्तो वनमुत्तो वनमेवधावति।
तंपुग्गलमेव पस्सथ मुत्तो बन्धन मेव धावति॥११

जो गृहस्थाश्रम धर्म्म रूपी वन से निकल कर परिव्राजक धर्म्म रूपी निर्वान में स्थित है अर्थात् जो संन्यासी होकर निर्जन तपोवन में विहार करता है वह वन मुक्त संन्यासी फिर भी गृहस्थाश्रम रूपी वन को दैाड़ता है। ऐसे योगभ्रष्ट अधःपतन शील संन्यासी को देखो जो कि मुक्तात्मा होकर बन्धन में प्रवेशता है ॥ ११ ॥

न तं दल्हं बन्धनमाहु धीरा
यदायसं दारुजं पब्बजं च।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु
पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा ॥१२॥

विद्वान् लोग जो लोह से बने हुये हथकड़ी इत्यादि बन्धन और लकड़ी से बने हुए बन्धन और मुंज से बनी हुई रस्सी इत्यादि बन्धन इन सम्पूर्ण बन्धन को दृढ़ बन्धन नहीं कहते हैं जो मणि कुंडलादि से अलंकृत पुत्र स्त्रियों में आशारूपी बन्धन है उसको ही दृढ़ बन्धन कहते हैं ॥ १२ ॥

एतं दल्हं बन्धनमाहु धीरा
ओहारिनं सिथिलं दुप्पमुञ्चं।
एतं पि छेत्वान परिब्बजन्ति
अनपेक्खिनो कामसुखं पहाय ॥१३॥

अधःपतन शील, सरल मालूम होती हुई दुर्मोचनी इस तृष्णा को ही विद्वान् गण दृढ़ बन्धन कहते हैं। इस तृष्णा रूपी बन्धन को भी विध्वंस करके विद्वान् लोग विषय भोग को त्याग कर वैराग्य से परिव्राजक हो जाते हैं ॥ १३ ॥

वे रागरत्तानुपतन्ति सोतं
सयं कतं मक्कटको व जालं।
एतं पि छेत्वान बजन्ति धीरा
अनपेक्खिनो सबदुक्खं पहाय ॥१४॥

जैसे मकड़ा अपने से रचे हुए जाल में वचरता है वैसे ही विषयी लोग निजासक्त तृष्णा स्रोत में पतित हो जाते हैं। इस तृष्णा स्रोत को भी रोक कर विद्वान् गण सम्पूर्ण सांसारिक दुख को छोड़ के अनपेक्षित होकर चले जाते हैं ॥ १४ ॥

मुञ्च पुरे मुञ्च पच्छतो मज्झे मुञ्च भवस्सपारगू।
सब्बत्थ विमुत्तमानसो न पुन जातिजरं उपेहिसि॥

अनादि संसार में उत्पन्न हुए तृष्णा स्रोत को त्याग करो और भविष्यत् में होने वाली तृष्णा स्रोत को त्याग दो। वर्तमान में आसक्त तृष्णा स्रोत को भी त्याग करो और तीनो काल में

विमुक्त आत्मज्ञानी होकर भवसागर के पारंगत हो जाओ। फिर जन्म जरा धर्म से लिप्त न होना अर्थात् जन्म मरण रहित निर्वान गामी हो जाओ ॥ १५ ॥

वितक्कपमथितस्स जन्तुनो
तिब्बरागस्स सुभानुपस्सिनो।
भिय्यो तण्हा पवड्ढन्ति
एस खो दल्ह करोति बन्धनं ॥१६॥

विषय चिन्ता करके मथन किए हुए तीव्र राग वाले सुभ निमित्त ग्राही मूर्ख की तृष्णा अत्यन्त बढ़ती है। यही मूढ़ कामदेव के बन्धन को दृढ़ करता है ॥ १६ ॥

वितक्कुपस्समे च यो रतो
असुभं भावयति सदा सतो।
एस खो व्यन्ति काहति
एस छज्जति मारबन्धनं ॥१७॥

जो विद्वान् विषय चिन्ता के शमनोपाय योग में रत है साव-धान से अशुभ भावना को सदा भावता है (अर्थात् रक्त मांस मल मूत्रादि से परिपूर्ण इस देह को सदा तुच्छ मानता है,) यही विद्वान् पुरुष कामदेव के आशा बन्धन को हटा देता है। यही विद्वान् कामदेव के बन्धन को तोड़ देता है ॥ १७ ॥

निट्ठंगतो असन्तसो वीततण्हो अनङ्गणो।
अच्छिन्दि भवसल्लानि अन्तिमोयं समुसयो॥

जो निष्पापी तृष्णा और भय रहित निष्ठावान् हो और जिसने संपूर्ण भवकण्टकों को तोड़ दिया हो तथा जिसकी देहाश्रित तृष्णा अन्तिम अवस्था में हो ॥ १८ ॥

वीततह्णो अनादानो निरुत्तिपदकोविदो ।
अक्खरानं सन्निपातं जञ्ञा पुब्बा परानिच ॥
स वे अन्तिमसरिरो महा पञ्ञो महा पुरिसोति ॥

ऐसे विगततृष्णा आशातीत निरुक्ति पद में निपुण (शब्द-शास्त्रज्ञ) अक्षरों के समूह और पूर्वापर को जानता है वह अन्तिम जन्म वाले महात्मा को ही महाज्ञानी महापुरुष कहते हैं ॥ १९ ॥

सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मिं
सब्बेसु धम्मेसु अनुपलित्तो ।
सब्बं जहो तह्णा क्खये विमुत्तो
सयं अभिञ्ञाय कमुद्दिसेय्यं ॥ २० ॥

हे उपक परिव्राजक? मैं सर्वविभु सर्वज्ञ और संपूर्ण सांसारिक धर्म में अनुपलिप्त सर्वत्यागी तृष्णाक्षय निर्वाण में आशा धर्म से विमुक्त हुआ हूं। संपूर्ण धर्म को स्वयं ही जान कर फिर किसी को मैं गुरु बतला दूँ। तात्पर्य्य यह है कि उपक नाम परिव्राजक ने गौतम बुद्ध से पूंछा कि आप के गुरु कौन हैं इस पर कहा कि मैं सर्व विभु स्वयंभू हूं तो इस जगत् में अपना गुरु किसको बतलाऊं ॥ २० ॥

सब्बदानं धम्मदानं जिनाति
सब्बरसं धम्मरसो जिनाति ।

सब्बरतिं धम्मरति जिनाति
तह्नाक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति ॥२१॥

धर्मोपदेश रूपी दान, अन्न वस्त्रादि सब दानों को जीतते हैं (अर्थात् सब से उत्तम हैं)। धर्मरूपी अमृत रस कटुतिक्तादि सब रसों को जीतता है। धर्म रूपी रति सब विषय की रतिओं को जीतती है। आशातीत योगी सब दुख को जीतता है ॥ २१ ॥

हनन्ति भोगा दुमेधं नो च पारगवेसिनो।
भोगतह्नाय दुमेधो हन्तिअञ्ञेव अत्तानं ॥ २२

धन सम्पत्ति का समूह उसे पतित कर देता है। जिसने उस अगाध धन पुञ्ज से पार रूपी मुक्ति मार्ग का पता नहीं लगाया और भोगाश्रित तृष्णा करके वह मूर्ख अन्य शत्रु के समान अपने को विनष्ट कर देता है ॥ २२ ॥

तिणदोसानि खेत्तानि रागदोसा अयं पजा।
तस्माहिवीतरागेसुदिन्नं होति मह प्फलं ॥२३

खेत समूह तृण के दोष से अर्थात् तृण बढ़ने से विनष्ट हो जाता है। यह प्रजा वर्ग (अर्थात् सांसारिक लोग) भी विषयासक्त राग के दोष से दूषित हो रहे हैं, इससे वैराग्य ज्ञानी महा पुरुषों के दिये हुए दान, महत्फलदायी होते हैं ॥ २३ ॥

तिणदोसानि खेतानि दोसदोसा अयं पजा।
तस्मा हिवीतदोसेसुदिंन्नहोति महप्फलं ॥२४

क्षेत्र समूह तृण के दोष से दूषित होता है यह प्रजा वर्ग क्रोध के दोष से कलुषित रहता है इससे क्रोध रहित महात्माओं को दिये हुए दान महत्फल होते हैं ॥ २४ ॥

तिणदोसानि खेत्तानि मोहदोसा अयं पजा।
तस्माहिवीतमोहेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥२५

क्षेत्र समूह तृण के दोष से दूषित होता है। यह प्रजा वर्ग भी इच्छा रूपी दोष से दूषित रहता है। इससे निर्लोभी महात्मा गण में दिये हुए दान महत्फल के देने वाले होते हैं ॥ २५ ॥

तण्हावग्ग २४

चक्खुना संवरो साधु साधु सोतेन संवरो ।
घाणे न संवरो साधु साधु जिव्हाय संवरो ॥१॥

चक्षु द्वारा पाप कर्म से संयम करना श्रेष्ठ है। श्रोत्र द्वारा पाप कर्म से संयम होना श्रेष्ठ है। घ्राण द्वारा पाप कर्म से संयम होना श्रेष्ठ है। जिह्वा द्वारा पाप कर्म से संयम अर्थात् निवृत्त होना श्रेष्ठ है।

कायेन संवरो साधु साधु वाचाय संवरो ।
मनसा संवरो साधु साधु सब्बत्थ संवरो ।
सब्बत्थ संवुतो भिक्खू सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥२॥

काय द्वारा पाप कर्म से संयमी होना श्रेष्ठ है। वाक् द्वारा पाप कर्म से संयमी होना श्रेष्ठ है। मन द्वारा पाप कर्म से संयमी होना श्रेष्ठ है। चक्षु आदि सब द्वारों से संयमी होना सबसे श्रेष्ठ है। सब द्वारों से संयमित भिक्षुक गण संपूर्ण दुख से छूट जाता है ॥२॥

हत्थसञ्ञतो पादसञ्ञतो,
वाचायसञ्ञतो सञ्ञतूत्तमो ।
अज्झत्तरतो समाहितो
एको सन्तुसितो तमाहुभिखु ॥३॥

हाथ संयम पाद संयम वाक् संयम से उत्तम संयमी आत्मदर्शी-समाधि स्थित एक चारी संतोषी पुरुष को ही भिक्षुक कहते हैं।

यो मुखसंयतो भिक्खू मन्तभाणि अनुद्धतो ।
अत्थं धम्मञ्च दीपेति मधुरं तस्स भासितं ॥४॥

जो भिक्षुक वाक् संयमित मितभाषी अविक्षिप्त होकर अर्थ और धर्म का प्रकाश करते हैं उन महात्मा के उपदेशित वाक्य समूह अति मधुर होते हैं। अर्थात् सब लोगों को प्रिय मालूम होते हैं।

धम्मारामो धम्मरतो, धम्मं अनुविचिन्तयं
धम्मं अनुस्सरं भिक्खु सद्धम्मा न परिहायति॥५

धर्माराम धर्म में रत धर्म को सदा चिन्तन करने वाले धर्म स्मृतिमान् भिक्षुक गण सद्धर्म से कभी हीन नहीं होते हैं ॥ ५ ॥

सलाभं नातिमञ्ञेय्य, नाञ्ञेसं पिहयं चरे।
अञ्ञेसं पिहयं भिक्खू, समाधि नाधिगच्छति॥६

अल्प किंवा अधिक, भाग्य वशात् मिले हुए अपने लाभ सत्कार का अपमान न करे। दूसरों के लाभ सत्कार की भी अभिलाषा न करे। दूसरों के लाभ सत्कार का अभिलाषी भिक्षुक गण समाधि को प्राप्त नहीं होता है ॥ ६ ॥

अप्पलाभो पि चेभिक्खू, सलाभंनातिमञ्ञति
तं वे देवा पसंसन्ति सुद्धा जिविं अतन्दितं॥७

जो भिक्खुक अल्प लाभ सत्कार वाला भी हो परन्तु अपने लाभ को यदि अवज्ञा न करें तो परिशुद्ध जीविका करने वाले आलस्य रहित उस भिक्षुक की देवता लोग भी प्रशंसा करते हैं।

सब्बसो नामरूपस्मिं यस्स नत्थि ममायितं।
असता च न सोचति सवेभिक्खूति वुच्चति॥८॥

जिनके देह और आत्मा में ममता अर्थात् स्वकाय दृष्टि नहीं तथा उन दोनों के अभाव से भी नहीं सोचते हैं उनको ही भिक्षुक कहते हैं ॥ ८ ॥

मेत्ताविहारी यो भिक्खू पसन्नो बुद्धसासने ।
अधिगच्छे पदं सन्तं सखारूपसमं सुखं ॥ ९ ॥

जो भिक्षुक सर्व भूतों में आत्मवत् देखता है बुद्ध शासन अर्थात् बुद्धोपदेशित धर्म शास्त्र में प्रसन्नता पूर्वक आचरण करता है वह भिक्षुक शुभाशुभ संस्कारों से निवृत्त शान्तिमय निर्वान पद को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

सिंच भिक्खु इमं नावं सित्ता ते लहुमेस्सति
छेत्वा रागंचदोसञ्च ततोनिब्बानमेहिसि ॥१०

हे भिक्षुक गण ! आत्मरूपी इस नौका से मिथ्या तर्क वितर्क रूपी जल को उलीच अर्थात् निकाल दो। तब मिथ्या कल्पना रहित तेरी आत्म रूपी नौका शीघ्र चली जायगी। इस से राग द्वेष दोनों को छेद कर निर्वाण को पहुंच जायगी ॥१०॥

पञ्च छिन्दे पञ्च जहे पञ्चवुत्तरि भावये
पञ्चसङ्गातिगो भिक्खू ओघतिन्नोतिवुच्चति ११

मिथ्या कल्पना, संशय, मिथ्याव्रत, विषय भोगेच्छा, और हिंसा मन इन पंच धर्म को जड़ से उखाड़ डालो और रूपराग,* अरुपराग,† अहंकार, अस्थिरता, अविद्या इन पांच धर्म को त्याग दो। श्रद्धा उत्साह स्मृति समाधि प्रज्ञा इन पांच धर्म को अत्यंत बढ़ावो इस से उस भिक्षु को जगत् बंधक लोभ द्वेष मोह मान मिथ्या कल्पना

* साकार ब्रह्म लोक की आशा † निराकार ब्रह्म लोक की आशा

नाम पांच धर्म को अतिक्रमण करने वाले ओघोत्तीर्ण ऐसा कहते हैं अर्थात् जगत् रूपी अगाध जल प्रवाह से उत्तीर्ण होने वाला कहते हैं ॥ ११ ॥

झाय भिक्खु मापमादो
मा ते कामगुणे रमस्सु चित्तं ॥१२॥
मा लोहगुलंगिलिपमत्तो
माकन्दि दुक्खमिदंति डह्यमानो ।

हे भिक्षुकगण ! ध्यान लगाओ, आलसी मत हो, अपने मन के कामगुण अर्थात् रूपादि पंच विषयों में मत रमण करो, प्रमाद से नरकगामी होकर प्रज्वलित लोह की गोली को मत निगलो। नरक की अग्नि से जलना यही महा दुःख है, ऐसा चिल्लाकर मत रोओ ॥ १२ ॥

नत्थिझानं अपञ्ञस्स, पञ्ञा नत्थि अझायतो
यह्मि झानञ्च पञ्ञाच, सवे निब्बानसन्तिको॥१३॥

प्रज्ञारहित मूर्ख का ध्यान नहीं लगता, बिना ध्यान किये प्रज्ञा भी नहीं होती है और जिसका मन ध्यान और प्रज्ञा दोनों में लगा है वह निर्वाण के समीप है । अर्थात् उसकी मुक्ति के लिए कोई संदेह नहीं है ॥ १३ ॥

सुञ्ञागारं पविट्ठस्स, सन्तचित्तस्स भिक्खुनो
अमानुसी रति होति, सम्माधम्मं विपस्सतो॥१४॥

निर्जन स्थान में बैठे हुए शान्तात्मा और भली प्रकार से धर्म को जानते हुए भिक्षुक गण गृहस्थाश्रमी मनुष्यों से उत्तम असाधारण परमानन्द अर्थात् संन्यस्त धर्म के प्रत्यक्ष फल को प्राप्त होते हैं ॥१४

यतो यतो सम्मसति, खन्धानं उदयव्वयं
लभति पीतिपामोज्जं, अमतं तं विजानतं ॥१५

जिस जिस समय रूप वेदना संज्ञा संस्कार विज्ञान नाम पंच-स्कन्धोंके उत्पत्ति विनाश धर्म को ध्यान करते हैं उस उस समय जो प्रीति आह्लाद प्राप्त होता है उसे विद्वानों के लिए अमृत पान ही जानना ॥ १५ ॥

तत्रायमादि भवति, इध पञ्ञस्स भिक्खुनो
इन्द्रियगुत्ती संतुट्ठी, पातिमोक्खे च संवरो॥१६

चक्षुरादि इन्द्रियों का संयम तथा संतोषी एवं प्रातिमोक्ष अर्थात् बुद्धोपदेशित शिक्षा धर्म का पालन यह संपूर्ण व्रत ही इस लोक में प्रज्ञावन्त भिक्षुक गण का उस निर्वाण प्राप्त के लिये पहिला कर्तव्य है ॥ १६ ॥

मित्ते भजस्सु कल्याणे, सुद्धाजीवे अतन्दिते
पटिसन्थार वुत्यस्स, आचारकुसलो सिया
ततो पामोज्जबहुलो, दुक्खस्सन्तं करिस्सति॥१७

हे भिक्षुक लोगो ! पवित्र जीविकात्मा निरालस कल्याण मित्र को भजो और प्रतिसन्धान वृत्ति अर्थात् सबसे मिलनसार हो और शीलादि आचार में निपुण हो इससे निज आचार विचार में प्रायः आनन्दित होकर जन्म मरणादि जनित दुःख का अन्त करोगे ॥ १७ ॥

वस्सिकाविय पुप्फानि, मद्दवानि पमुञ्चति
एवं रागञ्च दोसञ्च, विप्पमुञ्चथ भिक्खवो॥१८

जैसे वर्षिका (अर्थात् एक जाति की पुष्प लता) मलीन हुए पुष्पों को गिरा देती है वैसे ही, हे भिक्षुकगण ! तुम लोग भी राग और द्वेष दोनों को त्याग दे। । अर्थात् वह वृक्ष ऐसे हैं कि पहिले फूले हुये पुष्पों को निरवशेष गिराकर हो नवीन फुल फुलाते हैं। इस तरह अपवित्र मलिन हुए राग द्वेष के त्याग कर नवीन पवित्र धर्म का उपार्जन करे ॥ १८ ॥

सन्तकायो सन्तवाचो, सन्तवा सुसमाहितो
वन्तलोकामिसो भिक्खु,उपसन्तोति वुच्चति १९

जे सन्तकाय सन्त वाक् सन्त मन अर्थात् तीनों द्वारा संयमित धैर्य्यवान् और त्यजित लौकिक विषयवासना हे। उसके ही उपसन्त अर्थात् शान्तात्मा भिक्षुक ऐसा कहते हैं ॥ १९ ॥

अत्तना चोदयत्तानं पटिमंसेथ अत्तना ।
सो अत्तगुत्तो सतिमा,सुखं भिक्खू विहासिति२०

हे भिक्षुक गण ! आपको आपही चेताओ । आपही आप मीमांसा करो इसी प्रकार आत्मदर्शी वह भिक्षुक गुप्तात्मा स्मृतिमान् होकर सुख से विहार करेंगे ॥ २० ॥

अत्ताहि अत्तनो नाथो, अत्ताहि अत्तनो गति
तस्मा संयमयत्तानं, अस्सं भद्रं व वाणिज्जो २१

जैसे आपही आप का नाथ है आपही आपनी सुगति दुर्गति परायण है इससे जैसे वणिक् (महाजन) सुशिक्षित अश्व के यत्न से रखते हैं उनके समान मुमुक्षक भिक्षुक गण भी निजात्मा का संयम करें ॥ २१ ॥

पामोज्जबहुलो भिक्खू, पसन्नो बुद्धसासने
अधिगच्छे पदं सन्तं, संखारूपसमं सुखं ॥२२

आत्म-संयम-जन्य हर्षानन्द से विह्वलीभूत बुद्धोपदेशित धर्म शास्त्र में गाढ़ श्रद्धावान् भिक्षुकगण संस्कारों के निवृत्ति का स्थान परम शान्त पद निर्वाण को प्राप्त होंगे ॥ २२ ॥

यो हवे दहरो भिक्खु, युञ्जति बुद्धसासने
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तो व चन्दिमा २३

जो अल्पवयस्क (बालक) भिक्षुक भी हो परन्तु बुद्धशासन अर्थात् बुद्धोपदेशित योगाभ्यास में लगा रहता है वह मेघ घटा से मुक्त चन्द्रमा के समान इस लोक में यश कीर्ति द्वारा प्रकाश होता है ॥

भिक्खूवग्ग २५

छिन्द सोतं परक्कम कामे पनुद ब्राह्मण
संखारानं खयं ञत्वा अकतञ्ञूसि ब्राह्मणो॥१॥

हे ब्राह्मण ! तृष्णारूपी धारा को तोड़ डालो इसके तोड़ने के लिए उद्योग करो विषय कामना को त्याग करो संस्कारों का क्षय अर्थात् नाश समझ कर कर्त्ता रहित निर्वाण के ज्ञाता हो जाओ ॥२१

यदा द्वयेसु धम्मेसु पारगू होति ब्राह्मणो
अथस्स सब्बसंयोगा अत्थं गच्छन्ति आसवा॥२

जिस समय ब्राह्मण अर्थात् परिशुद्धात्मा योगी, शमथ अर्थात् तत्काल चित्तनिवृत्ति कारक योग, विपश्यना अर्थात् विशेष ज्ञानोत्पादक योग इन उभय पक्ष योग में जो पारदर्शी है अनन्तर उस ज्ञानी महात्मा की संपूर्ण जगत् बन्धनी आशा डोरी छूट जाती है ॥२॥

यस्स पारं अपारंवा पारापारं न विज्जति
वीततरं विसञ्ञुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३॥

जिस को पार कहिये आध्यात्मिक चक्षु श्रोत्रादि छः आयतन अर्थात् शुभाशुभ संस्कारों के उत्पत्ति स्थान और अपार कहिए बाह्यात्मिक रूपशब्दादि छः आयतन इन उभय आयतन अर्थात् चक्षु श्रोत्रादि दशेन्द्रिय से उत्पन्न सुख दुख इच्छा द्वेष नहीं है ऐसे विगत संतापी आशातीत महात्मा गण को ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥२॥

झायी विरजमासिनं कतकिच्चं अनासवं
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४॥

जो ध्यायी विगत रज अर्थात् राग द्वेषादि रहित, एक चारी कृतकार्य आशातीत और सिद्धात्मा है उस को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ ४ ॥

दिवा तपति आदिच्चो रत्तिमाभाति चन्दिमा
सन्नद्धो खत्तियो तपति झायी तपति ब्राह्मणो
अथ सब्बमहोरत्तिं बुद्धो तपति तेजसा ॥५॥

सूर्य्य दिन में तपता है. चन्द्रमा रात्रि में चमकता है कवच धारण से क्षत्रिय गण शोभते हैं, ध्यान से ब्राह्मण की शोभा होती है, अपने तेज से दिन रात्रि सब काल में बुद्ध भगवान् प्रकाशित होते हैं ॥ ५ ॥

वाहितपापोति ब्राह्मणो
समचरिया समणोति वुच्चति
पब्बाजयमत्तनोमलं
तस्मा पब्बजितोति वुच्चति ॥६॥

जिसने पाप को बहा दिया है उसे ब्राह्मण और जिसने पाप निवृत्ति के लिये धर्माचरण किया है उसे श्रमण तथा जिसने राग द्वेषादि मल का त्याग किया है उसको परिव्राजक कहते हैं ॥६॥

न ब्राह्मणस्स पहरेय्य नहस्स मुञ्चेथ ब्राह्मणो
धि ब्राह्मणस्स हन्तारं ततो धि यस्स मुञ्चति॥७

ब्राह्मण; ब्राह्मण पर प्रहार मारपीट न करे और प्रहार करने पर भी ब्राह्मण उस हिंसक के प्रति क्रोध न करे, ब्राह्मण के मारने वाले को धिक्कार है उससे भी अधिक क्षमा न करने वाले ब्राह्मण को धिक्कार है ॥ ७ ॥

न ब्राह्मणस्सेतदकिञ्चि सेय्यो
यदा निसेधो मनसो पियेहि

यतो यतो हिंसमनो निवत्तति
ततो ततो सम्मतिमेव दुक्खं ॥८॥

यदि प्रिय वस्तुओं के प्रति दौड़ते हुए मन के वेग को न रोकना ब्राह्मणों को यह किंचित् मात्र भी उचित कर्म नहीं है । जैसे जैसे हिंसा मन अर्थात् ईर्ष्या द्वेषादि निवृत्त हो जाती हैं वैसे वैसे दुख समूह भी घटते जाते हैं ॥ ८ ॥

यस्स कायेन वाचाय मनसा नत्थि दुक्कतं
संवुत्तं तीहि ठानेहि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥९॥

जिसको काय वाक् मन से किया हुआ पाप नहीं है और तीनों द्वार से संयम है उसको ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ ९ ॥

यह्मा धम्मं विजानेय्य सम्मासम्बुद्धदेसितं
सक्कच्चं तं नमस्सेय्य अग्गिहुतं व ब्राह्मणो ॥१०॥

जैसे अग्निहोत्री ब्राह्मण सादर भाव से अग्नि को नमस्कार करता है वैसे ही जिससे बुद्धोपदेशित शिक्षा धर्म प्राप्त हो उस गुरु जी की भी सेवा करे ॥ १० ॥

न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो
यम्हि सच्चंच धम्मोच सो सूची सो च ब्राह्मणो ११

जटा धारण से गर्गादि गोत्र होने से तथा ब्राह्मण कुल में जन्म मात्र से ब्राह्मण नहीं कहलाता है जो सत्यवादी धार्मिक है वही परिशुद्ध ब्राह्मण है ॥ ११ ॥

किं ते जटाहि दुमेध किं ते अजिनसाटिया ।
अब्भन्तरं ते गहनं वाहिरं परिमज्जासि ॥१२॥

हे दुर्बुद्धे ! जटा और मृगछाला धारण मात्र से फल क्या होगा तेरे अभ्यन्तर में तो तृष्णा रूपी सघन वन लगा हुआ है परन्तु बाह्य शरीर के मल को ही तू मार्जन करता है ॥ १२ ॥

पंसुकुलधरं जन्तुं किसं धमनी सन्थतं ।
एकं वनस्मि झायन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं १३

जो धूलि से भरे हुए मलिन चीर (काषाय वस्त्र) धारण करता है और अतिदुर्बल धमनी (नस) मात्र अवशिष्ट (अस्थिपंजर) है शरीर जिसका तथा अकेला निर्जन वन में ध्यानाकर्षित है ऐसे महात्मा को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ १३ ॥

न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसंभवं ।
भोवादी नाम सो होति स चे होति सकिञ्चनो ।
अकिचनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं १४

ब्राह्मण कुल तथा ब्राह्मणी गर्भ में जन्ममात्र से मैं ब्राह्मण नहीं कह सकता क्योंकि यदि राग द्वेषादि से वह दूषित हो तो अवश्य ही भोवादी नामधारी ब्राह्मण है जो रागद्वेषादि से निष्कलंकित आशातीत है उसको ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ अर्थात् गुण कर्म स्वभाव से रहित केवल भोः भोः शब्द व्यवहार करनेवाले ब्राह्मण को भोवादी कहते हैं ॥ १४ ॥

सब्बसंयोजनं छेत्वा यो वे न परितस्सति ।
संगातिगं विसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥१५

जो संपूर्ण जगत् बन्धनी आशाडोरी को तोड़ कर सुख दुःख से नहीं डरता है अर्थात् सह लेता है ऐसे आशातीत महात्मा गण को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ १५ ॥

छेत्वा नन्दिं वरत्तञ्च सन्दानं सहनुक्कमं ।
उक्खित्तपलिघं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं १६

द्वेषराग रूपी डोरी और तृष्णा सहित ६२ प्रकार की असत् दृष्टि को तोड़ कर खुली हुई अविद्या रूप द्वार की कील (दरवाज़े के पेच) है जिसके ऐसे महाज्ञानी को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥१६॥

अक्कोसं बधबन्धं च अदुट्ठो यो तितिक्खति ।
खन्तीबलं बलानिकं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं १७

जो दूसरे की निन्दा घात और बन्धन को दयापूर्वक क्षमा कर लेता है ऐसे क्षमा रूप बल और क्षान्ती रूपी सेना सहित महात्मागण को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ १७ ॥

अकोधनं वतवन्तं सिलवन्तं अनुस्सुतं ।
दन्तं अन्तिमसारिरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥१८॥

जो दयालु कठोरव्रतधारी सुशील तृष्णा क्षीण और जितेन्द्रिय है ऐसे अन्तिम जन्म अर्थात् अग्रिम जन्मरहित महात्मा गण को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ १८ ॥

वारि पोक्खरपत्ते व आरग्गेरिव सासपो
यो न लिम्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं १९

कमल पत्र में जल बिन्दु के समान तथा रूखानी की धार पर किंवा सुई के ऊपर सरसों के समान रूपादि विषयों में जिस का मन आसक्त नहीं है उसको ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ १९ ॥

यो दुक्खस्स पजानाति इधेव खयमत्तनो
पन्नभारं विसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२०॥

जो अपनी जन्म मरणादि दुख की अन्तिमावस्था का ज्ञानी है (अर्थात् पुनर्जन्म रहित हो गया है) ऐसे जन्म भार से विमुक्त बैरागी जन को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ २० ॥

गम्भीरपञ्ञं मेधाविं मग्गामग्गस्स कोविदं ।
उत्तमत्थं अनुपत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२१॥

जो गम्भीर बुद्धि स्मृतिमान् निर्वाणगामी धर्माधर्म का ज्ञानी है और सिद्धि प्राप्त है उसको ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ २१ ॥

असंसट्ठं गहट्ठेहि अनागारेहिचूभयं ।
अनोकसारिं अप्पिच्छं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२२॥

जिस का गृहस्थ और परिव्राजक दोनों आश्रमों से संसर्ग नहीं है ऐसे आशातीत परम संतोषी महात्मा गण को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ २२ ॥

निधाय दण्डं भूतेसु तसेसु थावरेसु च ।
यो न हन्ति न घातेति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२३॥

जो जंगम तथा स्थावर सब प्राणियों पर दया रखकर हिंसा-घात नहीं करता न दूसरों से कराता है ऐसे दया पूर्ण महात्मागण को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ २३ ॥

अविरुद्धं विरुद्धेसु अत्तदण्डेसु निवुत्तं
सादानेसु अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२४॥

जो वैरियों पर दया, हिंसकों पर निवृतदण्ड अर्थात् क्षमा करने वाला है और व्यसनियों में निर्व्यसनी होकर विचरता है उसको ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ २४ ॥

यस्स रागो च दोसो च मानो मक्खो च पातितो।
सासपोरि व आरग्गा तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२५॥

रुखानी की धार पर किंवा सुई के ऊपर सरसों के स… जिसका मन राग द्वेष तथा अहंकार और कपट से निर्लिप्त महात्मा गण को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ २५ ॥

अकक्कसं विञ्ञापिनिं गिरं सच्चं उदीरये
याय नाभिसजे किञ्चि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२६॥

कर्कश—कड़ाई रहित मीठा और सत्य वचन सदा बोलना चाहिए जिससे किसी की निन्दा और अपमान जरा भी न हो ऐसे मितभाषी महात्मा गण को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ २६ ॥

योध दीघं वा रस्सं वा अणुथूलं सुभासुभं ।
लोके अदिन्नं आदियाति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं २७

लोक में लम्बा किंवा चौड़ा तथा सूक्ष्म किंवा स्थूल, खुशी राजी से न दिये हुए परद्रव्य को जो नहीं ग्रहण करता है ऐसे निर्लोभी महात्मा गण को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ २७ ॥

आशा यस्स न विज्जति अस्मिं लोके परम्हि च।
निरासयं विसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२८॥

जिसको इस लोक परलोक में आसक्ति नहीं है ऐसे आशातीत मुक्तात्मा को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ २८ ॥

यस्सालया न विज्जन्ति अञ्ञाय अकथंकथी।
अमतोगधं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२९॥

जिसको तृष्णा नहीं और परिशुद्ध ज्ञान से मर्गामार्ग अर्थात् धर्माधर्म में शंका रहित है तथा अमृतमय निर्वाण का प्रत्यक्ष-र्शी है ऐसे महात्मा को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ २९ ॥

यो ध पुञ्ञं च पापं च उभो सङ्गं उपच्चगा।
असोकं विरजं सुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३०॥

जिसने पुण्य और पाप दोनों को त्याग दिया है और विषयानुरागी तृष्णा को भी अतिक्रमण किया है ऐसे शोक रहित वैरागीगण को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ ३० ॥

चन्दं व विमलं सुद्धं विप्पसन्नमनाविलं।
नन्दीभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३१॥

जो शरत् चन्द्रमा के समान निर्मल परिशुद्धात्मा सर्व कलंक रहित तथा भवबन्धनी आशारहित वैरागी है उस को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ ३१ ॥

यो इमं पलिपथं दुग्गं संसारं मोहमच्चगा।
तिण्णो पारगतो झायी अनेजो अकथंकथी।
अनुपादाय निब्बुतो तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३२॥

जो नर विघ्नकारी दुरतिक्रम इस संसार और अविद्या को पार किया है ऐसे संसारोत्तीर्ण भवपारग ध्यायी तृष्णाक्षीण निराशंकी आशाछिन्न महात्मा गण को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ ३२ ॥

योध कामे पहत्वान अनागारो परिब्बजे ।
कामभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३३॥

जो नर काम भोग को छोड़कर ब्रह्मचर्य्य पूर्वक परिव्राजक व्रत धारण करें ऐसे निवृत्त विषयात्मा सन्तजन को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ ३३ ॥

योध तह्लं पहत्वान अनागारो परिब्बजे
तह्लाभवं परिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३४॥

जो नर तृष्णा को हटाकर गृहस्थाश्रम से परिव्राजक व्रत धारण किया है ऐसे क्षीण तृष्णा महात्मा गण को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ३४

हित्वा मानुस्सकं योगं दिब्बं योगं उपच्चगा
सब्बयोगविसञ्जुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३५॥

जो मनुष्ययोग अर्थात् मृत्युलोक में जन्म की इच्छा त दिव्ययोग अर्थात् देवलोक को आकांक्षा इन दोनोंआशाओं को छो दिया है ऐसे योगमुक्त महात्मा को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ ३५ ॥

हित्वा रतिं अरतिं च सीतिभूतं निरूपधिं ।
सब्बलोकाभिभुं वीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३६॥

जो प्रीति अप्रीति दोनों का त्यागकर शान्ति मार्ग में स्थित है तथा राग द्वेषादि उपाधि रहित त्रिलोक पूज्य और उद्योगी महापुरुष है उनको ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ ३६ ॥

चुतिं यो वेदी सत्तानं उपपत्तिं च सब्बसो ।
असत्तं सुगतं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३७॥

जो नर प्राणियों के जन्म मरण की व्यवस्था को भली प्रकार जानते हैं ऐसे अनासक्त सत्यमार्गगामी बुद्धगण को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ ३७ ॥

यस्स गतिं न जानान्ति देवा गन्धब्बमनुस्सा ।
खीणासवं अरहत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३८॥

जिसकी गति को देव गन्धर्व मनुष्य लोग भी नहीं जान सकते हैं ऐसे तृष्णाक्षीण परमहंसगण को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ ३८ ॥

यस्स पुरे च पच्छा च मज्झे च नत्थि किञ्चनं ।
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३९॥

भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों काल में सर्व विषयग्राह्य आशा जिसके नहीं है ऐसे निवृत्तात्मा परमहंसगण को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ ३९ ॥

उसभं पवरं वीरं महेसिं विजिताविनं ।
अनेजं न्हातकं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४०॥

जो ऋषभ (सांड़) के समान निर्भय तथा सर्वोत्कृष्ट साहसी एवं महर्षि जितेन्द्रिय तृष्णा और रागादि मल रहित शुद्ध बुद्ध है उसको ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ ४० ॥

पुब्बेनिवासं यो वेदी सग्गापायञ्च पस्सति ।
अथो जातिखयं पत्तो अभिञ्ञा वोसितो मुनि
सब्बवोसितवोसानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४१॥

जो योगी पूर्व काल की जन्म मरण व्यवस्था तथा स्वर्ग नरक की व्यवस्था के ज्ञानी है पुनर्जन्म रहित और अपने निर्मल ज्ञान करके विषय वासना को जिसने त्याग दिया है ऐसे सर्व औपाधि रहित सिद्ध शिरोमणि परमहंसगण को ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ॥ ४१ ॥

ब्राह्मणवग्ग ॥२६॥

इतिधम्मपदसंपूर्णं ।

परिशिष्ट।

गौतम बुद्ध के समय में ऐसा कोई दिन, कोई समय न था कि आपने किसी न किसी का उद्धार न किया हो और भारतवासियों को भी इस बात का शौक़ रहता था कि आज बुद्ध भगवान् किस देश किस नगर और किस गाँव में किस के प्रति अपनी अद्भुत योग लीला तथा हृदय ग्राही उपदेश का परिचय दिखावेंगे, इसी प्रकार नर नारी भारतवासियों में एक प्रकार का उत्सव हर रोज़ बना रहता था।

बुद्ध भगवान् भी प्रति दिन रात्रि के शेष भाग में उठ कर अपने भविष्य ज्ञान द्वारा यह विचार किया करते थे कि आज मैं किस का किस उपाय से उद्धार करूं। इसी प्रकार प्राणियों के गुण कर्म स्वभाव को भली भांति जांच कर जहाँ जैसा योग्य हैं वहाँ वैसे पधार कर अनेक प्राणियों का उद्धार किया करते थे। इन वृत्तान्तों का विशेष विवरण पाली के सूत्र पिटक नाम धर्मशास्त्र में लिखा हुआ है।

यह धम्मपद भी उस शास्त्र से ही संग्रहीत किया गया है परन्तु संग्रह कारक महासभा ने नित्य पाठ पठनादि कर्म में सुगमता के लिये उन वृत्तान्त या इतिहासों को छोड़ कर केवल श्लोकों का ही संग्रह किया।

पीछे इस ग्रंथ के टीकाकार बुद्ध घोष ने इन इतिहासों का भी संग्रह कर अपने ग्रन्थ का गौरव बढ़ाया। इस का एक उदाहरण चक्षुपाल का इतिहास है जिसको मैंने इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में अति संक्षेप से लिख कर प्रकाशित किया है। इसी प्रकार हर एक श्लोक का भी एक एक इतिहास है।

यह ग्रन्थ, जैसे सनातनधर्मावलम्बियों में भगवद्गीता है वै
हो बौद्धों में मान्य तथा आदरणीय है। परन्तु भगवद्गीता
केवल अर्जुन के साथ कृष्ण जी का संवाद है, इस ग्रन्थ में ऋषि
मुनि तथा ब्राह्मण क्षत्रियादि अनेक रजोगुणी, तमोगुणी सत्व
गुणियों के साथ गौतम बुद्ध का संवाद अर्थात् उपदेश हैं, इस से
कहीं कहीं एक श्लोक से दूसरे श्लोक का अर्थ अभिप्राय की भिन्नता
भी देख पड़े तो पूर्वापर असम्बन्ध का दोष बुद्ध भगवान् के ऊपर
आरोपण न करें। यदि उन इतिहासों के साथ इस ग्रन्थ का
अवलोकन करेंगे तो किसी बात का संदेह नहीं उत्पन्न होगा।

और कल्प कल्पान्तरों का हाल तथा घोर कलिकाल में व्याप्यमान
दो हज़ार वर्ष के पहिले समय में भी भारतवासियों का उदार
चरित्र देश की स्थिति योगाभ्यास में निपुणता और धर्माचरण की
उन्नति का परिचय पाठकों के हृदय कमल में एक वार फिर
झलकने लगेगा। यदि पाठकों का अनुग्रह और रुचि होगी तो
किसी समय उन इतिहासों का भी अनुवाद कर भेट कराने का
विचार है।

आप लोगों का शुभचिन्तक

श्रीयुक्त उ० चन्द्रमणि भिक्खु

इस पुस्तक के मिलने का पता—

गोपीनाथ गयाप्रसाद की कोठी,

इलाहाबाद।

तथा

जगन्नाथ लालताप्रसाद,

बुकसेलर, चौक, इलाहाबाद।